* ओम् राम *

श्रीसद्गुरुकबीर हनुमत्साहित्यसभा-
ग्रन्थमालायाः द्वितीयपुष्पम्

# * केनोपनिषद् *

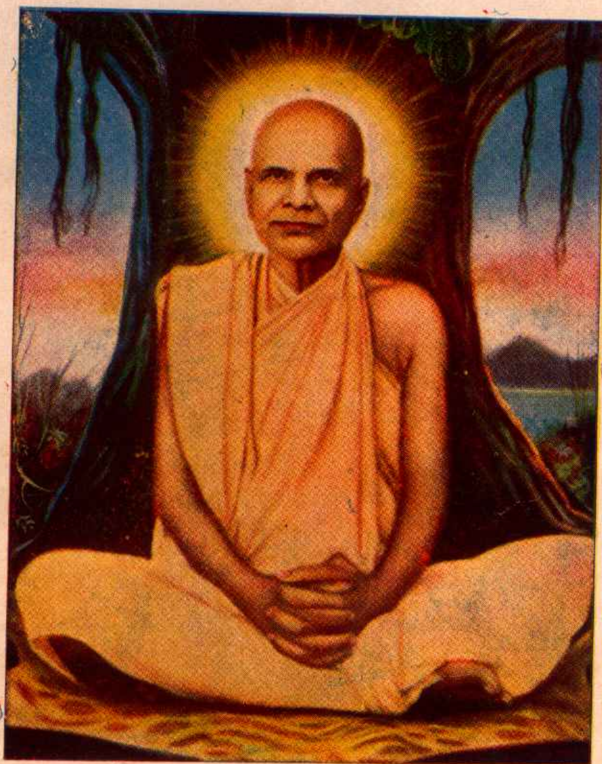
ब्रह्मविद्वरिष्ठश्रीस्वामिहनुमद्दासषट्शास्त्रि
कृतयासानुवादयासंस्कृतहिन्दीटीकया

सहिता

सम्पादक
## स्वामी श्रीसुभद्रदासशास्त्री

वि० सं० २०३७ | रामनवमी ई०स०१९८० | प्रथमसंस्करण १००० प्रति

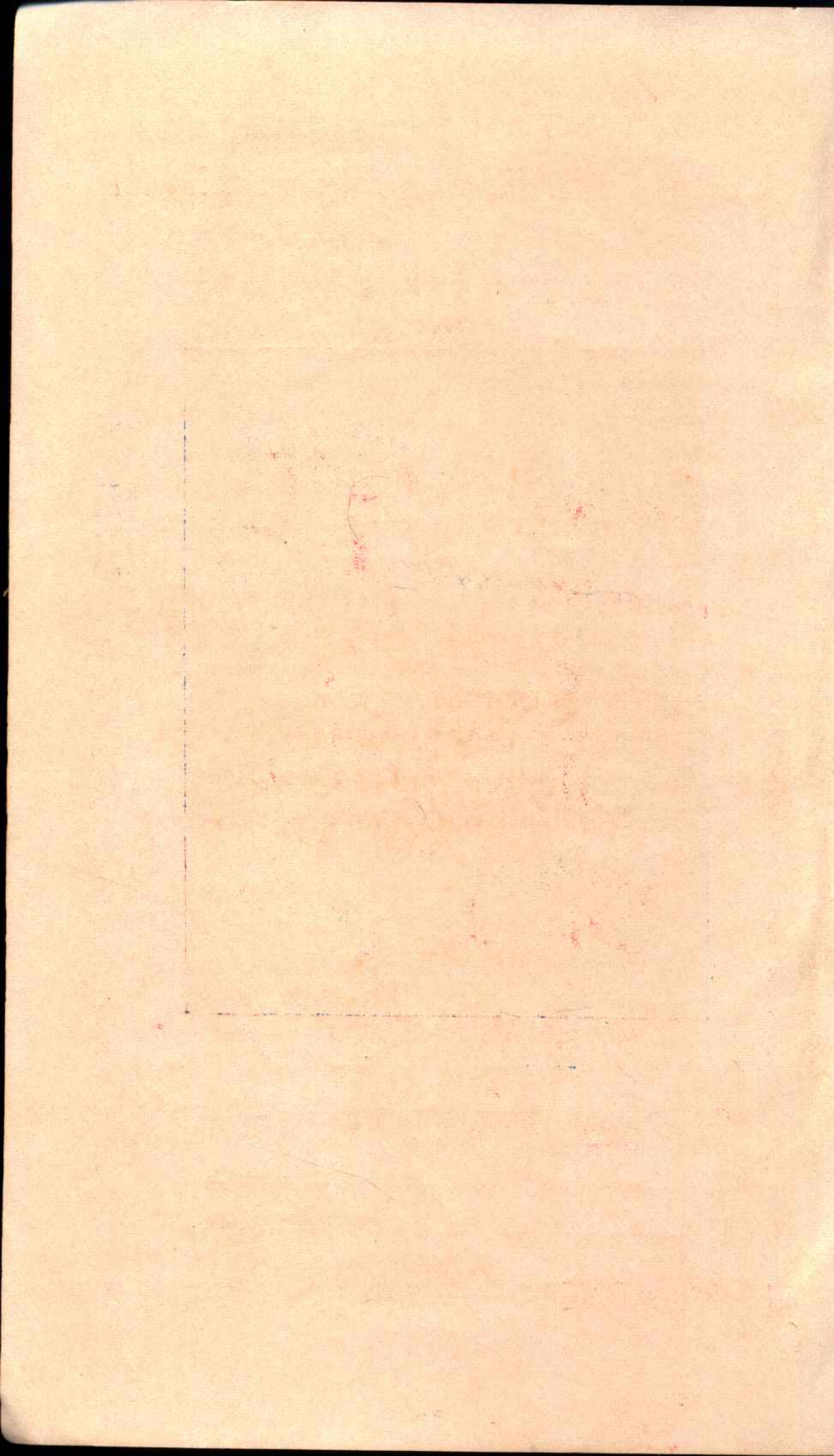
त्यक्तेषणानां यमिनां वरिष्ठः, परावर ब्रह्मविदां वरिष्ठः।
कारुण्य रत्नाकर साधुसेव्यः, श्रीसद्गुरुर्मे हनुमान् महीयान् ॥



परमपूज्यपाद ब्रह्मनिष्ठ

## स्वामीश्रीहनुमानदासजीसाहब षट्शास्त्री

ऋतम्भरा योगजधर्म जाता, प्रज्ञापरा यस्य विमुक्त शोका।
वैराग्य विज्ञान परावतारः, सोऽयं गुरुः श्रीहनुमान् वरीयान् ॥



ओम् राम

# केनोपनिषद्

❀

श्री सद्गुरु कबीर हनुमत् साहित्य सभा

ग्रन्थमालायाः द्वितीय पुष्पम्

परमपूज्येनप्रातःस्मरणीयेनसद्गुरुदेवेन
स्वामिश्रीहनुमद्दासमहोदयेन षट्शास्त्रिणा
विरचिताभ्यांसंस्कृतहिन्दीटीकाभ्यां-समलङ्कृता

प्रकाशक :—

श्री सद्गुरुकबीरहनुमत्साहित्यसभा

प्रथमावृत्तिः

संवत् २०३७ सन् १९८०

20/

पुस्तक मिलने का पता :—

(१) श्री जयन्तीलाल मणिलाल महेता, बी. ए.
रावपुरा कोठी के पास,
शास्त्रीपोल के समीप,
मु. बडोदरा (गुजरात) ३६०००१

(२) स्वामी श्री सुभद्रदासजी साहब सांख्ययोगवेदान्ताचार्य
के० ६७/६६–ए. महेश कालोनी,
ईश्वरगङ्गी, मु. वाराणसी १ ( उ. प्र. ) २२१००१

मुद्रक :—
हनुमान मुद्रण यन्त्र
बड़ी पियरी, वाराणसी २२१००१

# मंगलम्

सत्साहित्यसुधां निपीय सुधियस्
त्यक्त्वा विषं वासनाम्।
पञ्चकलेशसमुद्भवां जनिमतां
दुःखप्रदां सर्वदा ॥
ज्ञानं शान्तिकरं पुनर्भवहरं
प्रज्ञाप्रकर्षोज्ज्वलम् ।
सौख्यं देवसुदुर्लभं च धरणौ
प्राऽऽसादयन्तु द्रुतम् ॥

सुधीजन सज्जन, सत्य साहित्यरूपी सुधा को संतों के यथार्थ साहित्य को भलीभाति पान करके देहधारी मनुष्यों के पञ्चकलेशों अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश से उत्पन्न सदा दुःखप्रद वासनारूपी विषको त्यागकर प्रज्ञाकर्ष से उद्दीप्त जन्म मरण को हरनेवाले शान्तिकर ज्ञान और देवदुर्लभ निरतिशय परमानन्द को धरातल पर शीघ्र प्राप्त करें।

ॐ राम

# संस्था का परिचय

श्री सद्गुरु कबीर साहब का साहित्य अध्यात्मतत्व से सभर है। उनका उपदेस मानव समाज के लिए ऐक्य, विश्वबन्धुत्व की भावना और अध्यात्मतत्त्व की अपरोक्ष अनुभूति के लिए रहस्यमय उपदेश है। उनके उपदेशों को और उनके साहित्य को सुचारु रूप से समझने के लिए परम पूज्य अनन्त श्री सिद्ध श्री ब्रह्मविद्वरिष्ठ सद्गुरुदेव, श्रीस्वामीजी श्री हनुमानदासजी साहब-षट्शास्त्रीजी ने, श्री बीजकग्रन्थ शब्दामृतसिन्धु, साखीग्रन्थ आदिकी टीकाएँ और श्री चितमुखी, ब्रह्मसूत्र, खण्डनखण्डखाद्य, गीता, विचारसागर, तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा, तत्वार्थमणिमाला, अध्यात्मतत्त्वसम्वाद, मनोबोध, अनन्त परिचय, विचार-चन्द्रोदय, कबीरपरिचय, सद्धर्म चन्द्रिका लघुधर्म चन्द्रिका कबीरकौशलसार, तीसायन्त्र, दिव्यनामावली, बीजकार्थसार संग्रह आदि कई ग्रन्थों की टिकाएँ और रचना की है। परमपूज्य श्री सद्गुरुदेव श्रीस्वामीजी साहब का सर्व साहित्य, श्री सदगुरुकबीर साहब के साहित्य को यथार्थ रूप में समझने के लिए अतीव उपयोगी और सहायभूत है।

परमपूज्य श्रीसद्गुरुदेव श्रीस्वामीजीसाहब की अभिव्यक्ति ही पर ब्रह्मस्वरूप की अपरोक्ष अनुभूति रूप है। संतों की अध्यात्मिक स्थिति और उनका व्यक्तित्व अवर्णनीय है। शब्दों में उनके आनन्द का उनके ज्योतिर्मय दिव्य स्वरूप का वर्णन कैसे हो सकता है? वे तो स्वयंवेद्य हैं। उनके लिए यह जगत का अस्तित्व ही मिट गया है। वे सर्वत्र, सर्वदा, भीतर, बाहर, ऊपर, नीचे, दायें बायें, हर घड़ी, हर ठौर, केवल सर्वात्मा राम का ही दर्शन करते हैं वे स्वयं राम स्वरूप हैं। उनका वर्णन कोई करे भी कैसे? सद्गुरु स्वरूप ऐसे महापुरुषों के दर्शन ही दुर्लभ हैं। उनकी दृष्टि भी जिस पर पड़ती है वही प्रेम में मस्त हो जाता है। वे जहां रहते है वहां के परमाणुओं में भी प्रेम भरा रहता है। उनके चरणों को चूमकर पृथ्वी भी अपनी भाग्य सराहती है। उनके व्यक्तित्व में ऐसी एक अद्भूत शक्ति है कि जो मनुष्य को उनके समीप जाते ही एक क्षण में प्रेम रस में मग्न कर देती है। उनकी मधुर मृदुवाणी प्रवाह में यह ताकत हैं कि वह सबको अपना बना लेती है और मनको शान्ति देकर मनोवृत्ति को अन्तर्मुख करती

हैं । आधुनिक युग के वे एक अनुपम प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं । अपनी प्रतिभा के बल से उन्होंने अनेक परिस्थियों का सामना किया और समाज का उत्थान किया, भक्ति रस का सिंचन किया, और सद्गुरु कबीर साहब का पवित्र अमर संदेश जगत को तादृशरूप में समझाया । उनका व्यक्तित्व अनेक विशेषताओं का पुञ्ज है । वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी, सिद्ध योगी, वीतराग महा उपदेशक और आधुनिक विश्व में ज्ञान की पराकाष्ठा में पहुँचे हुए महानसिद्धसन्त पुरुष है । आप निवृत्ति-मार्ग के परम सन्त नेता हैं । शास्त्रों में और सन्त मत में बर्णित जीवनमुक्त दशामें आप स्थित हैं ।

आपका सर्व साहित्य सद्गुरु कबीर साहब के उपदेशों को यथार्थ रूप में समझने के लिए अतीव उपयोगी ओर सहायभूत है । इससे श्रीसद्गुरु कबीर-हनुमत् साहित्य का सुचारु रूपसे अधिक प्रसार प्रचार करने के लिए और इस साहित्य की सेवा अवरोधरहित सतत अस्खलित प्रवाह के रूप में हमेशा के लिए चालु रहे इस उद्देश्य से इस साहित्य सभा ट्रस्ट का निर्माण किया गया है । प. पू. श्री सद्गुरुदेव श्री स्वामीजी साहब के प्रेमी, अनुयायी शिष्य, संत, भक्त मंडल की बहुत दिनों से तीव्र उत्कंठा थी कि इस साहित्य का प्रचार और प्रसाद सर्वजनहितार्थ किया जाय और वह साहित्य अल्प मूल्य में या अमूल्य आमजनता को प्राप्त हो इस के लिए एक ट्रस्ट कायम किया जाय । उन्होंने उनके विचार प. पू. संत शिरोमणि श्री १०८ महन्त साहब श्री रामेश्वरानन्दजी साहब साहित्य व्याकरण, वेदान्त सांख्ययोगाचार्य, श्री सद्गुरु कबीर मन्दिर, पानीगेट, बडोदरा के आगे प्रकट किए और श्रीमहन्त साहब ने उनको प्रोत्साहित किया और आपने अपनी तरफ से स्थायी कोशमें सहायता भी की । हमारा उत्साह खूब बढ़ा और यह संस्था प्रवर्तित हुई, और श्री सद्गुरु कबीर हनुमान् साहित्य सभा ट्रस्ट का निर्माण ता. ५-२-१९७६ वसंत पंचमी के रोज हुआ । इस संस्था को गुजरात राज्य के धी बोम्बे पब्लीक ट्रस्ट एक्ट अनुसार बडोदरा मे. एसी. चेरीटी कमीशनर की ओफोस में रजिस्टर कराया गया है । इसका ट्रस्ट रजिस्ट्रेशन नंबर ए २४९८ है । इस ट्रस्ट का प्रथम ट्रस्टी मंडल निम्नांकित है ।

१ श्री १०८ महन्त पण्डित श्रीरामेश्वरानन्दजी साहब, बडोदरा—प्रमुख
२ श्री १०८ महन्त श्री रामदासजी साहब, चकना—उपप्रमुख
३ श्रीस्वामी श्रीसुभद्रदासजी साहब शास्त्री, वाराणसी—सह मंत्री
४ भक्त श्री जयन्तीलाल मणिलाल महेता, बडोदरा—मंत्री
५ भक्त श्री डाह्याभाई छगनभाई पटेल, बडोदरा—उपमंत्री

इस ट्रस्ट की साहित्य सेवा की प्रवृत्ति ट्रस्ट के स्थायी कोष के व्याजमें से की जायगी। इसके लिए पुस्तकें, पत्रिकाएँ और सामयिकों का प्रकाशन कोई भी ज्ञाति, सम्प्रदाय या जाति को लक्ष्यमें न रखकर सर्वजनहितोपयोगी सार्वजनिक हित को लक्ष्य में रखकर किया जायगा। वह सिर्फ कोई एक धार्मिक सम्प्रदाय या जाति या ज्ञाति के लिए नहीं रहेगा। वह साहित्य मानव समाज के मन, अन्तःकरण और आत्मिक उन्नति के लिए बिना साम्प्रदायिक क्षैक्षणिक प्रवृत्ति के रूप में रहेगा। पुस्तकें, पत्रिकाएँ तथा सामयिकों का प्रकाशन नफाकी दृष्टि से नहीं किया जायगा। स्ट्रट के संचालन का व्यवहारिक खर्च बाद करके ट्रस्ट की जो आवक होगी सो सर्व ट्रस्ट के चेरीटेबल उद्देस्यों की पूर्तीके लिए ही खर्च की जायगी। स्ट्रट का सर्व नाहित्य जाहेर जनता के लिए नफा रहित, लागत मूल्य से या लागतमूल्य से भी कम मूल्य से, या अमूल्य वितरण किया जायगा।

इस ट्रस्ट की प्रवृत्ति के मंगलाचरण के रूप में स्ट्रट के प्रेमी भक्त के तरफ से सद्गुरु कबीर साहब का चित्र इ. स. १६७७ के प्रयागराज के कुम्भमेला के शुभ अवसर पर अमूल्य वितरण किया गया था। इस चित्र की प्रति आज भी जिसको चाहिए तो ट्रस्ट की ऑफिस श्री सद्गुरु कबीर साहबका मंदिर, पानीगेट वडोदरा, या ट्रस्ट के मंत्री श्री जयन्तिलाल मणिलाल महेता-ठि. रावपुरा कोठी के पास, शास्त्री की पोल के पास, वडोदरा से प्राप्त होगी। इस ट्रस्ट के साहित्य की ग्रन्थमाला के द्वितीय पुष्प के रूप में इस पुस्तक को प्रकाशित करते हुए हम अतीव आनन्द की अनुभूति कर रहे हैं। इस अमूल्य पुस्तक से आमजनता अध्यात्म तत्त्वकी अनुभूति के लिए प्रेरित और लाभान्वित हो यही इसकी सार्थकता है। इस ट्रस्ट के स्थायी कोष के लिए सहायता आवकार्य हे।

इस पुस्तक में प. पू. श्री सद्गुरुदेव श्री स्वामीजी साहब की व्याख्या-आलोचना अतनी विशिष्ट शैली युक्त, अर्थ गांभीर्य युक्त और रहस्यमय है। यही इसकी विशिष्टता है।

आपका नम्र सेवक

जयन्तिलाल मणिलाल महेता

मंत्री.

* ओम् राम *

# केनोपनिषद्

## * प्रथमः खण्ड *

सर्वज्ञं सच्चिदानन्दं सर्वात्मानं महेश्वरम्।
व्यापकं सर्वलोकनां कारणं तं नमाम्यहम्॥ १॥
प्राणादि प्रेरकं शुद्धं सत्तामात्रेण यद्भवेत्।
ज्ञेयं तन्निगुंणं ब्रह्म, ध्येयं तत्सगुणं भजे॥ २॥
सद्गुरो र्वचनाज्ज्ञेयं वेदान्तै र्वेद्यमव्ययम्।
अक्षरं परमं ब्रह्म बन्दे सच्चित्सुखात्मकम्॥३॥

सर्वज्ञ=सर्वसाक्षी, सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वात्म=सर्वान्तर्यामी, महान्=विभु=मायीईश्वर, व्यापक=सर्वलोकादि का जो सत्तामात्र से कारण है, उसको मैं नमस्कार करता हूँ॥ १॥ जो सत्तामात्र से प्राणादिका प्रेरक होता है, अतएव जो क्रिया गुणादि रहित शुद्ध निगुंण ब्रह्म है ज्ञेयब्रह्म है, वही मायासे सगुण होकर ध्येय होता है, उसको मैं भजता हूँ॥ २॥ जो अक्षर=अविनाशी सच्चिदानन्दस्वरूप अव्ययपरम ब्रह्म, सद्गुरु के बचन से ज्ञातव्य है, तथा वेदान्तों से वेद्य=अनुभवनीय है, उस पर ब्रह्म की वन्दना करता हूँ॥ ३॥

अस्या उपनिषदः पूर्वोपनिषदा सहाऽऽद्यपदनामकत्वेन समानत्वं वर्तते, तदेव तदनन्तरपठनादौ हेतुत्वेन प्रतिभाति। तत्र निर्विघ्नत्वाद्यर्थः शान्तिपाठो वर्तते। तथाहि—

**ओम्–आप्यायन्तुममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि, सर्वं ब्रह्मौपनिषदं, माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां, मा मा ब्रह्मनिराकरोदनिराकरमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु, तदात्मनि निरते या उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु।**

ओम् शान्तिः शान्ति शान्तिः ॥ ३ ॥

मम=उपनिषदध्यनाध्यापनादिकर्तु र्मुमुक्षोरङ्गानि शरीरसर्वावयवात्मकानि=आप्यायन्तु वृद्धानि पुष्ठानि भवन्तु वागादिकर्मेन्द्रियाणि चक्षुः श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियाणि प्राण च सूक्ष्माणि सर्वाण्याप्यन्तु पुष्टानि भवन्तु अध्ययनाध्यापनाद्यानुकुल्येनाऽत्र शरीराङ्गस्वास्थ्यप्रार्थनाऽस्ति प्रवचन श्रवण दर्शनाद्यानुकुल्येन वागादिपुष्टिप्रार्थना वर्तते। यतः स्वास्थ्यपुष्टि विना तत्प्रेरकत्वेनोपदिष्टं ब्रह्म बोद्धुं न शक्यते–इति। बलञ्चाऽऽप्यायतु वृद्धिं प्राप्नोतु, यतः "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। मुण्डक ३।२।४" विवेक वैराग्याद्यात्मकशक्तिहीनेनाऽयमात्माऽलभ्योस्ति, योऽत्र प्राणादिप्रेरकत्वेन पृष्टोऽस्ति सर्वंममाङ्गानि सर्वं जगत्=औपनिषदम् उपनिषदैकज्ञेयं ब्रह्मात्मकमेव भातु. इत्थं सर्वस्य ब्रह्मात्मकत्वेन स्वीकारात्तदनुभवाच्चाहं कदाचिदपि ब्रह्म मा (न) निराकुर्याम्, सर्वथा सर्वात्मकत्वेन स्वीकुर्याम्। ब्रह्मणि श्रद्दधेम, यद् ब्रह्मात्मकमेव सर्वसत्त्वं विद्यते इति, अपरोक्षी च कुर्याम्। ब्रह्म च मा मा निराऽकरोत्—मत्तोऽन्यत्परोक्षं च न भवतु, ममात्मत्वेन भातु ब्रह्मेति प्रार्थये, इत्थञ्चावयोरनिराकरणमस्तु, मम च विशेषेणाऽनिराकणमस्तु, ब्रह्मत्वं भातु, यतो मम स्वरूपाऽऽपरोक्ष्याद् ब्रह्मस्वरूपेण भानादेव मम निःश्रेयसं स्याद्, अतस्तदात्मनि-ब्रह्मात्मनि, निरते=नितरामत्यन्तनित्यप्रेमवति मयि ये=विरागशमादयो धर्माः सत्यादयश्च ज्ञानसाधनत्वेन प्रसिद्धा वर्णिताः सन्ति। ते धर्मा मयिसन्तु तेऽवश्यमेव मयिसन्तु॥

**शरीरे वचसि स्वान्ते शान्तिः सत्यं च सर्वदा।**
**स्वास्थ्यं भवतु तापादेरभावः शान्ति पाठतः॥ १॥**

ओम्=हेपरमात्मन्, मम=उपनिषद के अध्ययनाध्यापन=पठन पाठन रूप कर्मकरने वाले मुमुक्षु मुझ शरीरके अवयव रूप सब अङ्ग "आप्यायन्तु" वृद्धि

युक्त पुष्ट होवें । वाक्हस्तादि कर्मेन्द्रिय तथा प्राण नेत्र कर्णादि ज्ञानेन्दिय जो सूक्ष्म हैं, वेसवभी वृद्धियुक्त पुष्ठ हों । यहाँ अध्ययन अध्यापन के अनूकूल=योग्य, शरीराङ्गों के स्वास्थ्य की प्रार्थना है । प्रवचन=व्याख्यन, श्रवण दर्शनादि के अनुकूल वागादि पुष्टि की प्रार्थना है । क्योंकि स्वास्थ्य तथा पुष्टि के बिना, वाक्प्राणादि के प्रेरक जिस ब्रह्मात्मा का उपदेश है सो समझा नहीं जासकता है ।। और सात्विकधैर्यधारणादिरूप बलकी भी वृद्धि पुष्टि को प्राप्त करें, क्योंकि "नाऽयमात्माबलहीनेन लभ्यः" मुण्ड. ३।२।४ ।।

वाक्प्राणादि का प्रेरक यह सर्वात्मा बिवेक वैराग्यादि सत्य तप आदि बलहीन=रहितसे प्राप्त-ज्ञात करने योग्य नहीं है । अतः बलार्थक प्रार्थना है । सर्वम्, मेरे अङ्गादि सब जगत, औपनिषदम्, उपनिषन्मात्रसे ज्ञेय=जाननेयोग्य ब्रह्मस्वरूप ही मुझे प्रतीत हो, यह भी प्रार्थना है । इसप्रकार से सब के ब्रह्मस्वरूपत्व के अनुभव से (अहं) मैं कभी भी ब्रह्म का निराकरण (मा) नहीं करूंगा, सर्वात्मस्वरूप ब्रह्मको अवश्य स्वीकार ध्यानादि करुंगा ब्रह्म च ब्रह्म भी मा ( माम ) मुझे मा=नहीं ( निराकरेत् ) निराकरण=निषेध नहीं करे । अर्थात् हमसे भिन्न परोक्ष ब्रह्म नहीं हो जाय, किन्तु मेरी आत्मस्वरूपसे सदाप्रतीत अनुभूतहो यह ओंकारार्थ परमात्मासे प्रार्थना है । इस प्राकार ब्रह्ममात्मा दोनों का ( अनिराकरणमस्तु ) अनिकरण हो । ( मे अनिराकरणमस्तु ) मेरा विशेषरूप से अनिराकरण हो, मुझे ब्रह्मात्मता प्रतीत हो, कि जिससे एतदात्मनिब्रह्मात्मनि=ब्रह्मस्वरूप में, निरत=अतिप्रेमयुक्त मुझ में जो उपनिषद में विरागशमादि धर्मप्रसिद्ध हैं, सो अवश्य प्राप्त हो ।।

शरीरे वचसि स्वान्ते शान्तिः सत्यं च सर्वदा ।
स्वास्थ्य भवतु तापादेरभाव शान्ति पाठतः ।।

शरीर वचन और मन में शान्ति पाठ से स्वास्थ्यसत्य और शान्ति सदा हो और तापादिका वभाव हो ।। १ ।।

सामवेदीयनवाऽध्यायाऽऽत्मिकायो शाखायाम्-अष्टस्वध्यायेषु चित्तशुद्धया-द्यर्थकानि कर्माणि प्रतिपादितानि वर्तन्ते, समस्तकर्माश्रयात्मकस्य प्राणस्योपासनान्यपि तत्रोक्तानि सन्ति, ययोः कर्मोपासनयोः पृथक् समुच्चयानुष्ठानाद् दक्षिणोत्तरमार्गाभ्यां चन्द्रलोकादौ ब्रह्मलोके च गताना मावृत्यनावृत्ती भवतः, स्वाभाविकवृत्या त्वधोगतिर्भवतीत्यादि भाष्यम् ।।

आवृत्ति गत्यादि रहितमोक्षफलकज्ञानार्थक उक्तशाखाया नवमाऽध्यायात्मकोऽयं केनोपनिद्ग्रन्थोवर्तते । तस्य ब्रह्मात्मविषयतात्पर्यलिङ्गानि च श्रीपण्डित पीताम्बरेण प्रोक्तानि सन्ति–

श्रोत्रस्येत्याद्युपक्रम्य प्रतिबोधादि वाक्यतः ।
कृतश्च ह्युपसंहारः स विज्ञेयस्तु पण्डितैः ॥१॥
तदेवब्रह्मत्वं विद्धीत्याद्यभ्यास उदीरितः ।
न तत्रेत्याद्यपूर्वत्वं प्रेत्याऽस्मादिति वै फलम् ॥२॥
ब्रह्महेत्याद्यर्थवादोऽविज्ञातमिति चान्तिमम् ।
एतैः केनोपनिषदोऽद्वैते तात्पर्यमिष्यते ॥३॥

श्रोत्रस्य श्रोत्रमित्युपक्रम्य, प्रतिबोधं विदितं मतम्, इत्यादिवाक्यत उपसंहारः कृतोऽस्ति, स पण्डितै र्ज्ञेयोऽस्ति, तयोस्त्वेकरूपत्वमेकं लिङ्गम् ॥१॥ तदेवब्रहमत्वं विद्धीत्यादितोऽभ्यासाख्यंद्वितीयम् ॥ २ ॥ न तत्र चक्षुर्गच्छतीत्यदितोऽपूर्वत्वम् ॥ ३ ॥ भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति । इति फलात्मकं लिङ्गम् ॥ ४ ॥ ब्रहम ह देवेभ्योविजिग्ये, इत्याद्यर्थवादात्मकम् ॥ ५ ॥ अविज्ञातं विज्ञानतां विज्ञातमविजानतामित्यनेनोपपत्तिः प्रदर्शिता ॥ ६ ॥

निष्काम कर्मोपायासनाभि विंशुद्धशान्तचित्तोऽस्या विद्यांया अधिकारी स्थात्, स च आचार्यवान् पुरुषो वेद, छा० ६ । १४ । २ ॥ इत्यादिशास्त्रात् कश्चिद् ब्रह्मनिष्ठं गुरुं विधिवदुपेत्य प्रत्यगात्मविषयाज्ज्ञानादन्यत्र शरणमपश्यन्, अभयं नित्यमचलं शिवमिच्छन्प्रच्छेति कल्प्यते-इत्यादि भाष्ये । कल्पितस्य प्रश्नकर्तुः प्रश्नोऽयं वर्तते, केनेषितमित्यादि :—

सामवेद के नव अध्यायात्मकशाखा के आठ अध्यायों में चित्त की शुद्धि आदि के हेतु कर्मों का प्रतिपादन है । और सब कर्म के आश्रय स्वरूप प्राण की उपासनायें भी उन अध्यायों में कही गईं हैं जिन कर्मोंपासनाओं के पृथक्-पृथक् और समुच्चय=साथ अनुष्ठान=आचरण से दक्षिण और उत्तर मार्गों द्वारा चन्द्रलोकादि में और ब्रह्मलोक में प्राप्त जीवों को आवृत्ति और अनावृत्ति की प्राप्ति होती है । और स्वाभाविक प्रवृत्ति से अधोगति ही होती है, इत्यादि भाष्य में वर्णित है ॥

उक्त शाखा केही नवम अध्यायात्मक, आवृत्ति गतिआदि रहितमोक्षार्थकात्मज्ञान के प्रतिपादक यह केन उपनिषद है । उसके ब्रह्मात्मविषयकतात्पर्य के बोधक लिङ्ग हैं कि—

श्रोतस्येत्याद्युपक्रम्य प्रतिबोधादिवाक्यतः ।
कृतश्च ह्युपसंहारस्तौलिङ्गं प्रथमं स्मृतम् ।। १ ।।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धीत्याद्यभ्यास उदीरितः ।
न तत्रेत्याद्यपूर्वत्वं प्रेत्यस्मादितिवैफलम् ।। २ ।।
वृह्महेत्याद्यर्थवादोऽविज्ञातमिति चान्तिमम् ।
एतैः केनोपनिषदोऽद्वैते तात्पर्यमिष्यते ।। ३ ।।

श्रोत्रस्य श्रोत्रम्, यहां से उपक्रम=आरम्भ करके "प्रतिबोधं विदितंमतम्," इत्यादि वाक्य से उपसंहार किया गया है, वे दोनों उपक्रम और उपसंहार प्रथम लिङ्ग कहा जाता है ।। १ ।। तदेव ब्रह्मत्वंविद्धि, इत्यादि अभ्यासात्मक दूसरा लिङ्ग है ।।२।। "न तत्रचक्षुर्गच्छति, इत्यादिप्ते तृतीय अपूर्वता कही गई है ।।३।। भूतेषु भूतेषु विचित्यधीराः प्रेत्याऽस्माल्लोकादमृताभवन्ति" इससे फलात्मक चतुर्थलिङ्ग सिद्ध होता है ।।४।। "ब्रह्महदे वेभ्यो विजिग्ये" इत्यादि अर्थवादरूप लिङ्ग है ।। ५ ।। "अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानतम्" इत्यादि से उतपत्ति दर्शाईगई है ।।६।। इन लिङ्गांद्वाराकेनोपनिषद के अद्वैत तत्त्व में तात्पर्यमान जाता है ।। १–३ ।।

निष्काम कर्म उपासना से विशुद्ध चित्तवालाइस ब्रह्मविद्या का अधिकारी होता है, सो "आचारवान् पुरुषो वेद, छा० ६।१४।२" आचार्य=सद्गुरुवाला पुरुष ही ब्रह्मात्मा को जानता है, इत्यादि शास्त्र के अनुमार, किसी ब्रह्मनिष्ठ-सद्गुरु के शरण मे विधिपूर्वक प्रात हो कर, प्रत्यगात्मा=सर्वान्तरात्मा के ज्ञान-के विना अन्यत्र कही शरण=रक्षक को नहीं देखता हुआ, और, अभय नित्य शिव=शुभ कल्याण के इच्छुक होता हुआ, उक्त सद्गुरु से पूछा=प्रश्न किया, ऐसी कल्पना यहाँ की जाती है, इत्यादि भाष्य में कहा गया है। कल्पित उस प्रश्न कर्ता के प्रश्न रूप "केनेषितमिति" इत्यादि वाक्य है—तथाहि

**केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ।**
**केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ।।१।।**

केन कर्त्रा प्रेषितं प्रेरितं प्रस्थापितं मनः स्वेषितं स्वेष्टं वाञ्छितं विषयं प्रति पतति गच्छति, करणत्वान्मनसः स्वतन्त्रप्रवृत्यसम्भवादात्मनश्चा-सङ्गत्वान्निष्क्रियत्वादचलत्वाच्चाप्रेरकत्वात्संशयो वर्तते । किञ्च "इन्द्रि-

याणां मनो नाथो मनो नाथस्तु मारुतः" इत्यादिवचनान्मनसः प्रवृत्तिशीलस्येन्द्रिय स्वामित्वात् तस्य च प्राणस्वामिकत्वात, प्राणाऽधीना मनसः प्रवृत्तिः स्यादिन्द्रियाणां मनोऽधीना प्रवृत्तिः सम्भवेद् अतो मन आदिस्वामित्वेन प्रेरकत्वेनाऽन्तरात्मा ज्ञातव्योऽस्ति, अथवा प्राणनिरोध पूर्वकं मनोनिरोधाद्यात्मकः समाधिरेवाऽभ्यसनीयोऽस्ति = इति संशयो वर्तते। इषितादौ छान्दस इट्॥

एवं केन युक्तो नियुक्तः प्रेरितः सन् प्रथयो मुख्यः पञ्चवृत्यात्मक प्राणः प्रैति प्रकर्षेण = एति सर्वदा चलति, इति प्रश्नो वर्तते केनेषितामिष्टामिमां वाचं वाणीं मनुष्या वदन्ति, चक्षुश्च श्रोत्रञ्च क उ क एव देवो द्योतनवान् युनक्ति प्रेरयति विषयेण संयोजयति इति प्रश्नः॥ केनेषितं मनः, इति सामान्येन, प्रेरक प्रश्नः, प्रेषितमिति विशेषविषयकः प्रश्न इति भाष्यादितो ज्ञेयोर्थोऽस्ति॥१॥

केन=किस कर्ता से प्रेषित, प्रेरित=प्रस्थापित=भेजा-हुआ मन, स्वेषित=स्वेष्ट-अपने वाञ्छित विषयों के प्रति पतति=प्राप्त होता है जाता है ? मन के करण होने से उसकी स्वतन्त्र प्रवृत्ति नहीं हो सकती है, और आत्मा भी असङ्ग अचल अक्रिय है, अतः प्रेरक नहीं हो सकता है, इससे संशय होता है। और "इन्द्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारुतः" इन्द्रियों का मन स्वामी=नेता है, मन का स्वामी राजा मारुत=वायु है, इत्यादि वचनों से प्रवृत्ति के स्वभाव वाला मन इन्द्रियों का स्वामी सिद्ध होता है, और मन का स्वामी=नेता प्राण सिद्ध होता है, कि जिससे प्राण के आधीन मन की प्रवृत्ति होती है, और मन के आधीत इन्द्रियों की प्रवृत्ति होती है, अतः मन आदि के स्वामी और प्रेरक रूप से आत्मा ज्ञातव्य=जानने योग्य है, अथवा प्राण निरोध पूर्वक मनोनिरोधादिस्वरूप समाधि का ही अभ्यास कर्तव्य है, यह संशय होता है॥ अतः केनेति प्रश्न है॥

इसी प्रकार प्राण अपान, समान, व्यान और उदान नामक (प्रथम) मुख्य=प्राण, "केन युक्तः" किससे नियुक्त=प्रेरित होकर प्रैति=प्रवृत्त होता है, सदा चलता है, यह प्रश्न है। केनेशितां=किससे इष्ट= वाञ्छित; वाक्=वाणी=शब्द को मनुष्य बोलते हैं, तथा नेत्र और श्रोत्र को (क उ) कौन विलक्षण देव=द्योतक ही (युनक्ति) अपने २ विषयों से संयुक्त करता है; संयोग के लिये प्रेरणा करता है, ये प्रश्न हैं॥१॥ केनेषितं मनः; यह सामान्य प्रेरक विषयक प्रश्न है, प्रेषितम्, यह विशेष प्रेरक विषयक है 'छान्दस इट है, सो भाष्यादि से ज्ञातव्य है॥१॥

मनसः प्रवृत्तिशीलत्वेऽपि करणत्वाज्जडत्वाच्च नियता प्रवृत्ति र्नसम्भवति चेतनाधिष्ठातारमन्तरा, आत्मनश्चासङ्गत्वेऽपि चुम्बकादिवत् सत्ताप्रकाशादिशक्तिभिः प्रेरकत्वादि सम्भवतीत्याद्याशयेन गुरुरूपिणी श्रुतिराह—

मन के प्रवृत्ति शील=स्वभाव होते भी करणत्व और जड़त्व के कारण स्वयं नियत प्रवृत्ति नहीं हो सकती है, और आत्मा के असङ्ग होते भी चुम्बकादि के समान सत्ता प्रकाशमायादि शक्ति द्वारा प्रेरकत्वादि हो सकते हैं, इत्यादि आशय से गुरु रूप श्रुति कहती है कि—

**श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद् वाचो ह वाचं सउ प्राणस्य प्राणश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्याऽस्माल्लोकादमृता भवन्तिः॥ २॥**

यत्=यो मन आदि प्रेरक आत्मा पृष्टोऽभूत। स श्रोत्रस्य शब्दग्राहकेन्द्रियस्य श्रोत्रम्=आत्मभूतं शब्दप्रकाशनशक्तिप्रदं वर्तते। चेतनाऽऽत्मना विना श्रोत्रेन्द्रियेण तद्वृत्याऽपि च शब्द प्रकाशनाऽसम्भवात्। मनस इन्द्रियनाथत्वेऽपि करणत्वाज्जडत्वाच्च स्वतो विषयप्रकाशत्वकस्य ज्ञातृत्वस्य तत्र सम्भवोनास्ति, तस्य सात्विकत्वेन तत्र चिदभिव्यक्तेस्तदधीनस्यैव तस्येन्द्रियस्वामित्वमपि भवति नान्यथा, अतएव संकल्पविकल्पात्मकस्य ज्ञानसाधारणसाधनस्य मनसो यत्सत्ता स्फूर्तिप्रदं ब्रह्माऽस्ति, तदेव श्रोत्रादिप्रेरक आत्माऽस्ति नान्यः। वाचोह वाचं=प्रसिद्धस्य वागिन्द्रियस्य शब्दोच्चारणशक्तिप्रदं तमात्मानं विद्धि। अथवा वाचमित्यस्य वागिति विपरिणामः कर्तव्यः पूर्वापरसामान्यात्, तथा च वाचोह वागात्माऽस्ति। एवं स त्वया पृष्ट आत्मा, प्राणस्य पञ्चावयवात्मकस्य मुख्यस्यापिप्राणस्य मनसो नाथत्वेन कथितस्य प्राणः शक्तिप्रदः स्वरूपसाधक आत्मैवास्ति। एवं चक्षुषो नेत्रेन्द्रियस्य चक्षुः=विषयप्रकाशात्मकस्वरूप आत्माऽस्ति। तथा च श्रोत्रादि सर्वेन्द्रियाणां प्राणस्य च शक्त्यात्सकः सर्वस्य स्वरूप साधकश्चयो ब्रह्मात्मा वर्तते, तस्यैवाऽज्ञानात्संसारबन्धो जन्मादिलक्षणो जीवस्य भवति। अतः सर्वसाधकं तं ज्ञात्वा= इत्यध्याहृत्य वाक्यार्थो बोधव्यः। धीरा धीमन्त आत्मज्ञास्तं ब्रह्माऽऽत्मानं त्मानंज्ञात्वा श्रोत्रादिष्वात्मत्वबुद्धयत्ककमज्ञानं सर्वाभिमानश्चाऽत्तिमुच्य त्यक्त्वा पुनश्चाःऽस्मात्प्रत्यक्षाद्देहादिलक्षणाल्लोकात्प्रेत्य पृथग् भूत्वा सर्व-

सङ्गादिरहिताः सन्तो विमुक्ता अमृता नित्यमुक्तब्रह्मात्मस्वरूपा भवन्ति। अतः कामादित्यागेनाऽसङ्गो भवितव्योऽस्ति मुमुक्षोरिति। त्यक्तेन भुञ्जीथाः, इनि पूर्वोपनिषदिप्रोक्तएवोपदेश इहापि प्रकारान्तेरेणाभिहित इति मन्तव्यम्॥ २॥

( यद् ) जो मन आदि का प्रेरक पूछा गया है, जिसके ग्यान के लिये प्रश्न किये गये हैं, सो सर्वात्मा होने के कारण शब्द ग्राहक श्रोत्र=कर्ण इन्द्रिय का श्रोत्र=आत्मा है, शब्द प्रकाशन शक्ति देने वाला है, क्योंकि चेतनात्मा के विना श्रोत्रेन्द्रिय से या उसकी वृत्ति से भी शब्द का प्रकाश=अनुभव जीव को नहीं हो सकता है, मन के इन्द्रियों के स्वामी होते भी करणत्व जड़त्व के कारण स्वतः विषय प्रकाशकत्व ग्यातृत्व का मन में होना असम्भव है। किन्तु मन के सात्त्विक होने के कारण उसमें चिदात्मा अभिव्यक्त होता है, और अभिव्यक्त चिदात्मा के आधीन ही मन के इन्द्रिय स्वामित्व भी सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं। अतएव संकल्प विकल्प स्वरूप ग्यान के साधारण साधन स्वरूप मन के सत्ता स्फूर्ति=प्रकाश को देने वाला=करने वाला जो ब्रह्म सर्वात्मा है, वही श्रोत्रादि का प्रेरक आत्मा है, अन्य नहीं॥ वाचोह वाचम्, प्रसिद्ध वाक् इन्द्रिय के वाक् आतमा को समझना चाहिये। अथवा "वाचो ह वाक्" ऐसा पाठ समझकर, वाको का वाक आत्मा है; ऐसा अर्थ समझना चाहिये। इसी प्रकार, ( स उ ) श्रोत्रादि के आत्मा ही मुख्य मुख्य प्राण का भी प्राण=आत्मा है; तथा चक्षु का चक्षु=शक्तिप्रद आत्मा है। उक्त रीति से श्रोत्रादि सब इन्द्रिय और प्राणों के भी जो सत्ता शक्ति प्रद ब्रह्मात्मा है, उसी के अग्यान से जन्मादि रूप संसार बन्धन जीव को होता है। अतः धीर आत्मज्ञ ज्ञानी सर्वात्मस्वरूपब्रह्मात्मा जानकर श्रोत्रादि में आत्मत्वबुद्धिरूपअज्ञान=भ्रमको तथा मन्ताज्ञाता श्रोता आदि के सब अभिमानों को ( अतिमुच्य ) त्यागकर फिर इस प्रत्यक्षदेहादि स्वरूप ( लोक ) दृश्य संसार से ( प्रेत्य ) पृथक सर्वथा असङ्ग हो कर, वे धी=विद्वान् अमृत=नित्यमुक्त ब्रह्मात्वस्वरूप हो जाते हैं, अतः कामादि को त्याग कर असङ्ग होनामुमुक्षु का कर्तव्य है, इत्यादि॥ २॥

श्रोत्रादीनामध्यात्मत्वाच्छ्रोत्रादिविषयत्वेनेदमित्थंतथाऽऽत्मन उपदेशो न सम्भवति, किन्तूक्तरीत्यैवोपदेशस्यसाधुत्व मस्तीत्याद्यशयेनाह श्रुतिः

श्रोत्रादिके भी आत्मा होने के कारण श्रोत्रादि के विषय रूप से, यह आत्मा इस प्रकार=विशेषण वाला है, इस रीति से आत्मा का उपदेश नहीं हो सकता है, किन्तु उक्त रीति से ही उपदेश की साधुता=सुन्दरता है, इत्यादि आशय से श्रुति कहती है कि—

**न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद् विदिताथो अविदितादधि, इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद् व्याचचक्षिरे ॥ ३ ॥**

तत्र=श्रोत्रादीनां श्रोत्रत्वादिनोक्ते ब्रह्मात्मनि, चक्षुः रूप-रूपवद्वस्तुग्राहकमिन्द्रियं न गच्छति, तमात्मानं न गृह्णाति, तत्र रूपाऽभावात्। किञ्च ब्रह्म सर्वात्माऽस्ति, ततश्चक्षुषोऽप्यात्मत्वादात्मनि च प्रवृत्तिगत्यनुपपत्तेरपि चक्षुर्ब्रह्मात्मनि न गच्छति, काष्ठादिदाहकस्तत्प्रकाशकोऽपि वह्नि र्नस्वात्मानं दहति, प्रकाशयति वा किन्तु दाहकप्रकाशस्वरूपेण तिष्ठति, तथैव सर्वात्मा ब्रह्म कस्यचिदिन्द्रियादेः प्रकाशनादिक्रियाविषयो न भवति, किन्तु प्रकाश ज्ञानादि सर्वोपाधिकस्वरूपेणप्युपाधिसत्वकालेऽवतिष्ठते। अतश्चक्षुषोऽविषयत्वेऽपि स्वर्गशब्दादिवाग्विषयत्वं स्यादित्यपि न वक्तुं शक्यते, यतस्तत्र न वाग् गच्छति, वाचाहि शब्द उच्चार्यमाणे यदा शब्दो वाच्यमर्थं प्रकाशयति, तदाऽभिधेयं ( वाच्यं ) प्रति वाग् गच्छति, ब्रह्मात्मा च न कस्यापि शब्दस्य वाच्यो भवति, जाति गुणक्रियादिधर्मवतोऽर्थस्यैव वाच्यत्वप्रसिद्धेः, किञ्च शब्दस्य तन्निर्वर्तकस्य जनकस्य च वागिन्द्रियस्याऽऽत्मा ब्रह्माऽस्ति, आत्मनि च कस्यापि गति र्न सम्भवति, नहि जलमात्मानं क्लेदयतीति, अतः "नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यः। कठवल्ली ६।१३१" "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सहा, तैत्तिरीय २।९" इत्यादि संगच्छते। अत एव च, नो मनस्तत्र गच्छति, स्वभिन्नस्यैव मनसा संकल्पादिसम्भवात्, स्वाऽऽत्मनि मनसोऽपि प्रवृति र्न सम्भवति। अतएव च "मनसो मनो यद्" इत्येवमेवात्मन उपदेशोऽपि सम्भवति, न च मनो विषयत्वेनेति भावः इन्द्रियमनोभ्याश्च वस्तुतोविज्ञानस्य सम्भवात्, तयोरगोचरत्वाच्च ब्रह्मात्मनस्तद् ब्रह्म वयं न विद्मो न जानीमइदमित्थतया, किन्तु मनसो मनस्तया मन आदिसाक्षितया च जानीम एवाऽतो ब्रह्मोपदेशस्याऽऽनर्थक्याऽऽपति र्न भवतीति गुरव उक्तवन्तः। अतएव

चैतद् ब्रह्म यथा=येन प्रकारेण कश्चिच्छिष्यं प्रति=अनुशिष्यादुपदिशे तत्प्रकारं वयं न विजानीमः, यतः श्रोत्रस्य श्रोत्रमित्यादिसामान्योपदेशान्तर भावि विशेषेणेदमित्थन्तयोपदेशात्मकं प्रकारान्तरं नास्त्येवेति-भावः। जातिगुणक्रियादिमतोवस्तुनो विशेषत उपदेशो भवति ब्रह्मणि जात्यादयो न विद्यन्ते, तथापि न विद्मो न विजानीम इति वचनात् सर्वथैव तदुपदेशप्रकाराऽभावे प्राप्ते=आगम सद्गुरु वाक्यैकवेद्यत्वाऽभिप्रायेणाऽऽह=अन्यदेवतद्विदितात्=तत्=श्रोत्रस्य श्रोत्रमित्यादिनोक्तं ब्रह्मः विदिताद्=विदिक्रिया=वेदनविषयाद्=व्यक्तात्कार्यसमूहादअन्यत् पृथगेव, यतः सर्वस्य ज्ञाता ज्ञानविषयो न भवति॥ यथा दीपो दीपान्तेण न दीप्यते स्वयं प्रकाशत्वात् तद्वत्। अविदितात्=भूताद् भव्यादव्यक्ताच्च कारणात्मकादज्ञानादधि=उपरि=असम्बद्ध वर्तते, अतस्तस्मादप्यन्यद् वर्तते=इत्याह=अथो=अपि च=अवितादधि। कार्यं हि अल्पात्मकं भवति, यदल्पं तदार्तमतस्तद्ध यं विद्यते, कारणं च कार्यायोपादेयं भवति, हेयोपादेयाभ्यामन्यद् ब्रह्म सर्वात्माऽस्ति, स सर्वात्मापि सन्=आचार्योपदेशमन्तरेण ज्ञातुमशक्यइत्याशयेनाह=इति=उक्त प्रकारकमुपदेशं पूर्वेषां=पूर्वकालिकानामाचार्याणां वयं वर्तमानकालिका गुरवोऽपिशु-श्रम=श्रुतवन्तःस्मः। के ते=इति चेदाह=यः आचार्या नः अस्मभ्यं तत् ब्रह्म व्याच चक्षिरे व्याख्यात वन्तो विस्पष्टमुक्तवन्तस्तेषामुपदेशं शुश्रूम इति। एतेनाऽऽचार्यपरम्परयाऽधिगता विद्या साधिष्ठं साधयति नान्यथेति सूचितम्॥३॥

तत्र=श्रोत्रादि के श्रोत्रादिरूप से वर्णित ब्रह्मात्मामें चक्षु=रूप और रूपयुक्त वस्तु के ग्राहक नेत्रेन्द्रिय नहीं प्राप्त होती है, अर्थात् उस आत्मा का ग्रहण नहीं करतो है, क्योंकि उसमें रूप नहीं है। और ब्रह्मसब की आत्मा है, अतः नेत्र का भी आत्मा है, और आत्मा में प्रवृत्ति=गति हो नही सकती है। अत एव काष्ठादि के दाहक प्रकाशकभी अग्नि अपने स्वरूप के दाह या प्रकाश नहीं करती है, किन्तु अन्य के दाहक प्रकाश स्वरूप रहती है। इसी प्रकार सर्वात्मा ब्रह्म किसी के इन्द्रियादि के प्रकाशनादि क्रिया का विषय नहीं होता है, किन्तु प्रकाशज्ञानादिसबोधिकस्वरूप से भी उपाधि की वर्तमानता कालमें ब्रह्म रहता है, अतः नेत्र काअविषय होता हुआ भी स्वर्ग=सुखादि के वाचक शब्दादि रूप वाक् का विषय ब्रह्म होगा, यह भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि न तत्र वाग् गच्छति उस उसब्रह्म में वाक् की गति नहीं होती है, जब वाक् से शब्द का उच्चारण होता है।

तब वह शब्द अपने वाक्य=शक्य-अर्थ का श्रोता के प्रति प्रकाश ( बोध=ज्ञान ) कराता है, यही स्ववाच्यार्थ के प्रति वाक् की गतिकही जाती है। और ब्रह्मात्मा किसी शब्द का वाच्य नहीं होता है, क्योंकि जातिगुणक्रियादि धर्मवाला पदार्थ ही शब्दके वाच्यार्थरूप प्रसिद्ध हैं। और शब्द तथा उसके जनक=कारण वाक् इन्द्रिय का भी ब्रह्म आत्मा है, और आत्मा में किसी की भी गति नहीं हो सकती, जल अपने को गीला नहीं करता है, अतः "नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा। कठवल्ली ६।११७" "यतो वाचोनिवर्तन्ते अप्राप्यमनस सह। तैत्तिरीय ३।९। बचन मन या नेत्र से आत्मा प्राप्त करने योग्य नहीं है। मन सहित वचन जिसको अप्राप्तकर जिससे निवृत्त होते हैं, इत्यादि श्रुतियाँ भी युक्त ही कहती हैं। अतः "न मनस्तत्र गच्छति" मन भी ब्रह्मात्मामें गमन नहीं करता है, क्योंकि आत्मासे अन्य के ही संकल्पादि मनसे हो सकते है, आत्मा में मन की भी गति प्रवृत्ति नहीं हो सकती है, अतः 'मनसोमनोयद्" जो मन का भी मन है, इस प्रकार से ही आत्मा का उपदेश ठीक हो सकता है, मनके विषय रूप से नहीं, इन्द्रिय और मन से वस्तु का विज्ञान होता है, परन्तु मन इन्द्रिय का अविषय ब्रह्मात्मा है। अतः गुरुजन कहते हैं कि "न तद्विद्मो न विजानीमौ वयम्" हम उस ब्रह्म को सामान्य विषय रूप से विशेष विषय रूप से नहीं जानते है, किन्तु मन आदि का भी मन=साक्षी रूपसे तो हम जानते ही है, अतः ब्रह्मोपदेश सार्थक है, अनर्थक नहीं "अतश्च=यथैतद नुशिष्याद" इसीसे इस ब्रह्म के जिस प्रकार=विशेषण द्वारा कोई शिष्य के प्रति अनुशासन=उपदेश करे, उस प्रकार को "वयं न जानीमः" हम नहीं जानते हैं, अर्थात् वह प्रकार ब्रह्म में है नहीं। अतः"श्रोतस्यश्रोत्रम्" इत्यादिसामान्योपदेशही युक्त है। "नविद्मः" इत्यादि वचन से सर्वथा ब्रह्मोपदेश के प्रकार=रीति के अभावप्राप्त होने पर, शास्त्र सद्गुरुके वाक्य से ब्रह्मात्मा जानने योग्य है, इस अभिप्राय से कहा गया है कि "अन्यदेवतद्विदितात्" वह सर्वात्माब्रह्म, विदित=वेदन=ज्ञान विषयव्यक्तकार्यों से अन्य ही है, क्योकि सबका ज्ञाता ज्ञान का विषय नहीं होता है, जैसे दीप दीपान्तर में नहीं प्रदीप्त होता है। "अथो अविदितात" अज्ञात् भूतभावी अव्यक्त कारण से भी ( अधि ) उपरि=भिन्न असङ्ग है। और कार्य अल्पात्मक होता है, और जो अल्प=परिछिन्न होता है, सो मर्त्य=विनश्वर होता है, अतः हेय=त्याज्य होता है। और कारण, कार्य के लिये उपादेय होता है, ग्राह्य होता है, हेय और उपादेय से अन्य ब्रह्म सर्वात्मा है। सर्वात्मा होते भी आचार्य=गुरु के उपदेश के बिना स्वयं जाना नहीं जा सकता हैं, इस आशय से कहा गया है कि ( इति ) उस प्रकार वाले

उपदेश को ( पूर्वेषां ) पूर्वकालिक गुरुजनो के ही हम वर्तमान काल के गुरुजन भी शुश्रुम, सुने हुए हैं, यह उपदेश हमारी कल्पना रूप नहीं है। वे आचार्य कौन थे, ऐसी जिज्ञासा हो तो कहा जाता है कि– "येनस्तद् व्याचचक्षिरे" जो गुरुजन "नः" हमलोगों के प्रति तद्‌ो उस ब्रह्म का व्याख्यान=स्पष्ट उपदेश किये, उनके उपदेशों को हम सुने हैं, इत्यादि। गुरुपरम्परा से प्राप्त विद्या ही अतिशुभ को प्राप्त कहाती है, अन्यथा नहीं, यह यहां सूचित किया गया है ॥३॥

उक्तविदितादन्यत्वश्रवणाज्जिज्ञासा जायते, यत्कर्मिभिरुपासकैश्च कर्मोपासनादिभिर्विदितमेव ब्रह्म देवाद्यात्मकं कथ्यते, तत्कथमुक्तोपदेशो युक्तः स्यात्तत्राह—

इस श्रुति का संक्षिप्त यह अर्थ है कि, रूपादि रहित होने से नेत्रादि ज्ञानेन्द्रिय की गति ब्रह्ममें नहीं होती है, क्रिया के अविषय अवाच्य ग्रहण त्याग के अयोग्या होने से वागादि की गति उसमें नहीं होती है। निर्विशेषसर्वात्माहोने से विशेष विषयक मन बुद्धि अहंकार का विषय भी ब्रह्म नहीं है, अतः हम कोई भी नेत्रादि से नहीं जानते हैं, न मनो बुद्धि से स्वयं चिन्तन निश्चय कर सकते हैं कि जिससे=जिस रीतिसे अनुशासन=उपदेश भी किया जा सके, किन्तु विदित अविदितसे अन्यत्व के श्रवण=सुनने से जिज्ञासा=ज्ञानेच्छा होती है कि कर्म उपासनादि करने वाले विदितदेवादिकोही ब्रह्म कहते हैं। पूर्व वर्णित उपदेश युक्त=उचित कैसे हो सकता है, तो कहा जाता है कि—

यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४॥

यत् सर्वात्मभूतं ब्रह्म विदिताऽविदिताऽन्यद् ब्रह्म=वाचा वाण्या=इन्द्रिय=शब्दात्मिकयाऽनुभ्युदितमप्रकाशितम् इदन्तयाऽनभ्युक्तं वर्तते, कथञ्चिल्लक्षाणया तदितरनिषेधेन चोक्तरीत्या बोध्यते, येन च ब्रह्मणा ज्योतिरात्मना वागभ्युद्यते=प्रकाश्यते प्रयुज्यते, तदेव ब्रह्म सर्वात्मानमनिदंभूतं, ब्रह्मज्ञानाधिकारी त्वं विद्धि जानीहि, ब्रह्मज्ञानाऽनधिकारिण एव तु-इदन्तया विदितं वेद्यमुपास्यं वा वदन्ति, तव किं तेनेति, त्वं तु यद् ब्रह्मोपाधिभेदभिन्नं देवादिस्वरूपं कर्मिण उपासका उपासते=सेवन्ते ध्यायन्ति, तन्न ब्रह्म विद्धि, यत इदम्भूतं सत्यज्ञानानन्दस्वरूपं ब्रह्म न भवति, नकाराऽऽवृत्योक्तार्थो ज्ञातव्योऽस्ति ॥४॥

जो सर्वात्मस्वरूप विदित अविदित से अन्य ब्रह्म वाचा, वाक इन्द्रिय और शब्दात्मक वाणी से अभ्युदित्=कथित=साक्षात् प्रकाशित नहीं होता है, अतः अनभ्युदित=अप्रकाशित रहता है, किन्तु उक्त रीति से विदिता विदित के निषेध द्वारा किसी प्रकार लक्षणा द्वारा ब्रह्म समझा जाता है। और सर्व ज्योति स्वरूप ( येन ) जिस ब्रह्म से ( वागभ्युद्यते ) वाक प्रकाशित= प्रयुक्तः=उच्चारित होता है ( तदेव ) उसी सर्वात्मस्वरूप अनिदं=अविष- यात्मक=विषयी=प्रकट प्रकाशक ब्रह्म को ज्ञानाधिकारी ( त्वं ) तुम विद्धि= जानो। ब्रह्मज्ञान के अनधिकारी ही विदित कार्यादि जो इदं है उसकी इदं= वाह्यदृश्यादि रूप से उपासना करते हैं, तुझे उससे क्या जरूरत है, तुम तो इदं देवादि स्वरूपं विदितं ब्रह्म नविद्धि। क्यों कि वह सत्य ब्रह्म नहीं है ॥४॥

**यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।**
**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ५ ॥**

यत्=ज्योतिरात्मकं ब्रह्म, मनसा=मनोबुद्धयात्मकेनाऽन्तःकरणेन कोऽपि न मनुते, कश्चिदपि न संकल्पयति, न निश्चिनोति, न जानातीति, सर्वा- ऽवभासकत्वेन, ब्रह्मणो, मनसोऽन्तरात्मत्वात्स्वात्मनि च प्रवृत्तेरसम्भ- वान्मनः स्वात्मप्रकाशनाय न प्रवर्तते। अतो यद्यपि मनसा कोऽपि ब्रह्म ज्ञातुं प्रकाशयितुमनुभवितुं न शक्नोति, तथापि "मनसैवेदमाप्तव्यम्" इत्यादिश्रुतिबलादनुभावाच्च ब्रह्माकारमनोवृत्त्या ब्रह्मविषकमज्ञानकृतमावरणं हृदि वर्तमानं व्यपोह्यते। ब्रह्मात्मा तु स्वयं प्रकाशते=इति। अतः स्व- प्रकाशेन येन ब्रह्मात्मना ज्योतिषा मनोऽन्तःकरणं मतं=विदितं प्रकाशितं सत् स्वकार्ये समर्थं भवति, इत्याहुराचार्याः। अतो ज्ञानाधिकारी त्वं तदेव मनसोमनोभूतं मनः प्रकाशकं ब्रह्म विद्धि, यदिदं "मनोब्रह्मेत्युपासीत्" इत्यादिश्रुत्योपास्यत्वेन वर्णितं मन आदिकं वर्तते, यच्चोपासका इदन्त्वेनो- पासते ध्यायन्ति, तद् ब्रह्म त्वं न विद्धि, यतस्तदुपास्यस्वरूपं ब्रह्म न वर्तत इत्यादि ॥५॥

यत्=जिस ज्योतियों के ज्योति स्वरूप ब्रह्म को, कोई भी मनसा, मन बुद्धि स्वरूप अन्तःकरण से "न मनते" मनन निश्चय नहीं करता है, कोई भी मन से जिस सत्य ब्रह्म को इदं=दृश्यरूप नहीं जानता है, न जान सकता है। क्योंकि ब्रह्म के सब के आत्मा होने से सबके प्रकाशक होने से मनका भी

अन्तरात्मा प्रकाशक ब्रह्म है, और अपनी आत्मा में प्रवृत्ति के अभाव से, मन निजात्मा ब्रह्म के प्रकाशन=ज्ञान के लिए प्रवृत्त नहीं होता है। अतः कोई भी मन से ब्रह्म के ज्ञान अनुभव यद्यपि नहीं कर सकता है, तथापि "मनसैवेदमाप्तव्यम्" यह ब्रह्म मन से ही प्राप्त करने योग्य है, इत्यादि श्रुति और निजानुभव से सिद्ध होता है कि गुरु उपदेशादि द्वारा निजात्मस्वरूप ब्रह्माकार मनोवृत्ति से हृदय में वर्तमान=रहने वाला, ब्रह्मात्मविषयक अज्ञानकृत आवरण=भ्रम नष्ट हो जाता है। फिर ब्रह्मात्मा स्वयं प्रकाशता है, अनुभव गम्य होता है अतः स्वयं प्रकाश ( येन ) जिस ब्रह्मात्मा से ( मनोमतम ) अन्तःकरण विदित प्रकाशित होकर अपने कार्य में समर्थ होता है। इत्याहः, इस प्रकार आचार्य गुरु कहते हैं, अतः ( तदेव ) मन का आत्मस्वरूप प्रकाशक उसी ब्रह्म को तुम जानो ( यदिदं ) जो यह "मनो ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि श्रुतियों से उपास्य रूप से वर्णित मन आदिक हैं, जिनकी इदंरूप से उपासक उपासना करते हैं, ज्ञानाधिकारी तुम उनको सत्य ब्रह्म नहीं जानो। क्यों कि वे उपास्य वस्तु सत्य ब्रह्म (न) नहीं है॥ आवृत्ति से वह अर्थ लभ्य है॥५॥

**यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति।**

**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥६॥**

यत् = चक्षुषश्चक्षुश्चक्षुः प्रकाशकं ब्रह्म कश्चिदपि जनश्चक्षुषा, रूप प्रकाशकेनेन्द्रियेण न पश्यति ब्रह्मणोऽरूपित्वात्। येन च ज्योतिरात्मना ब्रह्मणा हेतुना सर्वोऽपि लोकश्चक्षूंषि=अन्तःकरणवृत्तिभेदभिन्नाश्चक्षुर्जन्या रूपादिविषया वृत्तीः पश्यति विजानाति, अहं रूपवन्तं घटं पटं जानामीत्याद्यनुभवति तदेव चक्षुस्तद्वृत्तिप्रकाशकं ब्रह्म त्वं विद्धीत्यादि॥६॥

यत्=जिस चक्षुओं का चक्षु=प्रकाशक ब्रह्म को कोई चक्षुषा नेत्र से नहीं 'पश्यति, नहीं देखता है, क्यों कि ब्रह्मरूप रहित है, और येन=जिसचिदात्मक ब्रह्म ज्योति से ही, नेत्रों को=नेत्रजन्य अन्तःकरण की घटादिविषयक वृत्तियों से सब देखते=जानते हैं कि जिससे कहते हैं कि "घटमहं जानामि" तहां घट का "अयं घटः" यह ज्ञान व्यवसाय कहा जाता है, और घट को मै जानता हूँ, इस ज्ञान को अनुव्यवसाय कहते हैं, व्यवसाय से घटादि विषय, मात्र का प्रकाश होता है, अनुव्यवसाय से घटादि विषय, उसके अन्तःकरण की वृत्तिरूप ज्ञान तथा अन्तःकरण में चिदाभास रूप ज्ञाता जीव इन तीनों का

प्रकाश होता है, और उनका प्रकाशक सर्वात्मा सर्वसाक्षी स्वयं प्रकाश ब्रह्म होता है। अतः जिस ब्रह्म से तीनों जाने प्रकाशे जाते हैं। उसी को तुम जानो, इदं को ब्रह्म नहीं जानो, क्योंकि, इदमर्थ ब्रह्म नहीं है, यहाँ भी, नेदं की आवृत्ति समझना चाहिये ॥ ६ ॥

**यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।**
**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥७॥**

यत्–श्रोतस्य श्रोत्रात्मकं ब्रह्म कश्चिदपि श्रोत्रेण शब्दग्राहकेणेन्द्रियेण न शृणोति न विषयी करोति, न प्रकाशयतीति यावत्। किन्तु येन सर्वात्मना ब्रह्मणा=इदं प्रसिद्धमिन्द्रियात्मकं श्रोत्रं सविषयं श्रुतं विदितं भवति, अहं श्रोत्रेण शब्दमनुभवामि–इत्येवमनुभूतं भवति, तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि=इत्यादि ॥७॥

यत्=जिस श्रोत्र का भी श्रोत्रात्मक ब्रह्म को, कोई भी शब्दग्राहक श्रोत्र इन्द्रिय से सुनता=जानता नहीं है, किन्तु येन=जिस सर्वात्मा ब्रह्म से ( इदं ) यह श्रोत्रेन्द्रिय, स्वविषयादि शब्द सहित श्रुत विदित=ज्ञात होता है, कि जिससे श्रोता कहता है कि "अहं श्रोत्रेण शब्दमनुभवामि" मै कान से शब्द का अनुभव करता हूँ, जिस ब्रह्म से ऐसा अनुभव होता है; उसी को तुम जानो, जिस इदम् की उपासना करता है, उस इदम् को तुम नहीं जानो, इत्यादि ॥ ७ ॥

**यत् प्राणेन न प्रणिति येन प्राणः प्रणीयते।**
**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥८॥**

इति केनोपनिषद् प्रथमः खण्डः

यत् प्राणस्य प्राणमित्युक्तं ब्रह्म, प्राणेन=प्राणान्तःकरणवृत्तिसहितेन-घ्राणेन पार्थिवेन कश्चिदपि न प्राणिति, गन्धवद् यद् घ्राणेन नानुभवति कश्चित्। तथा यद् प्राणेन घ्राणेन श्वास प्रश्वासवृत्या न प्राणिति, न जीवति, न स्थितमेति, किन्तु येन प्राणः=घ्राणः प्रणीयते स्वविषयं प्रति प्राणान्तःकरणवृत्या प्राप्यते स्वविषयं गृहणाति च। तदेव=श्वासप्रश्वासादि-

हेतुभूतं ब्रह्मत्वं विद्धि, यदिदन्तया जना उपासते, तत्त्वं न विद्धि, यतस्तद् ब्रह्म नास्तीति ॥८॥

यत्=जिस प्राणों का प्राण स्वरूप वर्णित ब्रह्म को प्राणेन, प्राण और अन्तःकरण की वृत्ति सहित गन्ध ग्राहक, घ्राणेन, नासिका से न प्राणिति= कोई भी गन्ध के समान ग्रहण अनुभव नहीं करता है। तथा जो ब्रह्म-श्वास प्रश्वास द्वारा घ्राण से 'न प्राणिति, नहीं जीवित रहता है, किन्तु जिस ब्रह्म से प्राण=घ्राण प्रणीयते=अपने विषय में अन्तःकरण की वृत्ति द्वारा प्राप्त कराया जाता है, उसी ब्रह्म को तुम जानो। जो श्वासादि का भी कारण है। "न प्राणेन नापाने न मर्त्यो जीवति कश्चन। इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥ १ ॥ कठ० २।५।५" नेदं इत्यादि पूर्ववत ॥८॥



# अथकेनोपनिषद्

## * द्वितीयः खण्ड *

"नान्यदतोऽस्ति विज्ञातृ। बृ० ३।८।११ ॥ इत्यादि श्रुत्याब्रह्मणोऽन्यो विज्ञाता निषिध्यतेऽतो व्यक्ताऽव्यक्तात्मकविदिताऽविदिताऽन्यत्वेनोपदिष्टमप्यात्मानं यदि शिष्यो जानीयाद्, यद् ब्रह्म हेयाऽऽदेयविपरीत स्वरूपोदिष्टमभूत–तदहमेवास्मि, ततो ब्रह्मात्मानं निजानुभवविषयत्वेन सम्यग् जानामि, तज्ज्ञानाऽविषयस्य ब्रह्मणः स्वयं प्रकाशस्य ब्रह्माऽऽकारवृत्याऽज्ञाननिवृत्तिमात्रेण प्रकाशमानस्य ज्ञानविषयत्वेन ज्ञानमसमीचीनं मिथ्यैव स्यात्ततस्तस्माच्छिष्यबुद्धेश्चालन=व्यावर्तनार्थमाचार्यः (श्रुति) प्राह=

"नान्यदतोऽस्ति विज्ञातृ" बृ० ३।८।११॥ इस ब्रह्म से अन्य विज्ञाता नहीं है। इति श्रुति से ब्रह्मान्य विज्ञाता का निषेध किया गया है, यतः व्यक्ताऽव्यात्मकविदिताऽविदित से अन्य प्रथम = उपदिष्ट = वर्णित बूह्म को आत्मा को भी यदि शिष्य जानेगा कि–जो ब्रह्म हेय = त्याज्य और उपादेय = ग्राह्य से ऐसा कहा गया है ( उपदिष्ट हुआ है ) वह ब्रह्म मै ही हूँ, मै हेयोपादेय नहीं हूँ॥ अतः बूह्मस्वरूप आत्मा को मैं अपने अनुभव के विषय करके सम्यक् खूब = ठीक समझता हूँ। ज्ञान के अविषय ब्रह्म के इस प्रकार के शिष्य का ज्ञान मिथ्या ही होगा, क्यों कि ब्रह्माकारवृत्ति से अज्ञान की निवृत्ति मात्र होती है, जिससे ब्रह्मस्वयं प्रकाशता है, उसका अनुभव विषयत्व रूप से ज्ञानसत्य नहीं हो सकता है, अतः शिष्य की बुद्धि को उक्त उसके निश्चय से रहित करने के लिये गुरु रूप श्रुति कहती है कि—

**यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणोरूपम्।**
**यदस्य त्वं यदस्य च देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम्॥१॥**

मया विदितादन्यत्वेनोपदिष्टमपिब्रह्म, त्वमहं सुवेदः सुष्टु ज्ञान-विषयत्वेन जानामि=इति यदि मन्यसे, अपि=र्तार्हि त्वं ब्रह्मणो दभ्रमेव (अल्पमेव) रूपं (स्वरूपं) नूनं (निश्चितं सर्वजनै र्ज्ञातमेव) वेत्थ, न मयोपदिष्टमविषयात्मकं विदिताऽविदितान्यद् ब्रह्मत्व- जानीषे, श्रोतु र्वचनादितो भ्रमादिकमूहित्वा गुरोरियमुक्तिः सम्भवति। कथमहमल्पमेव जानामीति पृष्टो गुरुराह—यदस्य चिन्मात्रस्य सत्यानन्दस्वरूपस्य ब्रह्मणः= त्वं वेदितृत्वेन कल्पितं कर्तृभोक्त्रात्मकं स्वरूपं वर्तसे, यदस्य च ब्रह्मण कल्पितं स्वरूपं देवेषूपास्यमाधिदैविकमिन्द्रादिस्वरूपं वर्तते, तत्सर्वंपरिच्छिन्नमल्पमेव, सोपाधिकं वस्तुकिमपि चिन्मात्रविभु ब्रह्म नास्ति अथवा यदस्य ब्रह्मणः स्वरूपं त्वं सम्यग् विषयत्वेन वेत्थ, तदल्पमेव रूपं वेत्थ, देवेष्वपि यः कश्चिदेवं वेत्ति स अल्पमेव वेत्ति, अथ नु=यत एवं तवाल्प-ज्ञानवत्त्वं वर्तते, तस्मात्पूर्णज्ञानार्थं ते=तव मीमांस्यं विचार्यमेव ब्रह्मास्ति, इत्यहं मन्ये, यतो विचारितं ब्रह्मचिन्मात्रं विदितं स्यादित्यहं मन्ये। विचारस्य ज्ञाने मुख्यसाधनत्वादित्याचार्योक्तिः॥ अथवाऽऽचार्येण ब्रह्मण मीमांस्यत्वस्योक्तौ सत्यां शिष्य एकान्ते=आगमतर्काभ्यां विचार्याऽनुभूय च ब्रह्माऽऽचार्यसन्निधौ गत्वोवाच=मन्ये विदितम्—मया ब्रह्म विदितं ज्ञातमित्यहं जानामि मन्ये=इति ॥१॥

मैं तुझे विदित से अन्य ब्रह्म है, इस प्रकार से उपदेश किया है, तुम यदि मानते=हो समझते हो कि "अहं ब्रह्म सुवेद" मैं ब्रह्म को सुन्दर ज्ञान का विषय स्वरूप समझता हूँ, सो—तुम अभी ब्रह्म के रूप=स्वरूप को दभ्रमेव,= अल्प ही, नूनं = निश्चित = सत्य, साधारण लोक के समान 'वेत्थ' जानते हो, मुझ से उपदिष्ट अविषय स्वरूप विदिताविदित से अन्य ब्रह्म को अभी नहीं जानते हो। शिष्य के बचनादि से ही उस को भ्रमादि की कल्पना से ऐसी उक्ति हुई है। कैसे मैं अल्प ही जानता हूँ, इस प्रकार पूछने पर गुरु कहते हैं कि जो इस चिन्मात्र ब्रह्म का ही तुम उपादक कर्ता भोक्ता स्वरूप हो, और इस ब्रह्म का ही जो देवों में उपास्य स्वरूप कल्पित है, सो सब परिच्छिन्न ब्रह्म के होते भी अल्प ही हैं। अथवा इस ब्रह्म के जिस स्वरूप को तुम सम्यक सुन्दर जानते हो, तथा देवों में भी जो कोई ब्रह्म के स्वरूप को सुन्दर विषय स्वरूप से जानता है सो ब्रह्म का स्वरूप अल्प ही है, अतः तुम अल्प को हीं जानते हो, और वह देव भी अल्पज्ञ है, सर्वज्ञ नहीं (अथ नु) अतएव=जिससे तुझे अभी अल्प का ही ज्ञान हुआ है, तिससे पूर्णस्वरूप के ज्ञान के लिये "मीमांसामेवते

मन्ये" ते=तुझे,=ब्रह्म = मीमांस्य = विचारणीय है । ऐसा मैं ( मन्ये ) मानता हूँ ( समझता हूँ ) क्योंकि विचार ज्ञान के मुख्य साधन है, अतः विचारित ही ब्रह्म=विदित ज्ञात होगा, यह भी मैं मानता हूँ । अथवा गुरुने ब्रह्म को मीमांस्य =विचार्य कहा, तब शिष्य एकान्त में विचार से अनुभव करके गुरुके पास में जाकर कहा कि "मन्ये ब्रह्म विदितम्" मुझे ब्रह्म विदिता = ज्ञात हुआ, अब मैं ऐसा समझता हूँ । इत्यादि ॥१॥

शिष्य एव विदितत्वे हेतुमाह—

शिष्य ही विदितत्त्वमें कारण का वर्णन करता है कि—

नाऽहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥ २ ॥

विदिताविदितान्यत्वेनोक्तं ब्रह्माऽहं सुवेद=सुष्टु ज्ञानविषयत्वेन जानामीति न मन्ये, तर्हि=अविदितं स्यात् त्वया, ततो विदितं मन्य इति पूर्वोक्तिरयुक्ता स्यादिति चेन्न, नो वेद न जानामीत्यपि न मन्ये, अज्ञान-विषयत्वरूपमविदितत्वं ततो न प्राप्नोति,यतश्चाहं वेद=ज्ञानाऽविषयत्वेन सर्व-साक्षित्वेन जानामि, चकारान्न वेदेतिसम्वध्यते, ततोऽज्ञानकृताऽऽवरणनाशक वृत्तिविषयत्वेन विदितत्वेऽपि ब्रह्मणो घटादिवत् तत्स्वरूपप्रकाशकवृत्तेरभा-वाद् ब्रह्मणोऽविदितत्वमपि सम्भवति, ततो ब्रह्मणि वेदनाऽवेदनयो विरोधोऽपि नास्तीत्याद्याशयेन शिष्य आह=नः अस्माकं श्रोतॄणांमध्ये यः कश्चिन्मद-न्योऽपि-तत्=मदुक्तं वचनं वेद-जानाति, स तत्=श्रोत्रस्य श्रोत्रमित्यादिना पूर्वोक्तं ब्रह्म वेद, नान्यस्तद्वेदेति । किं तद्वचनमित्याकाङ्क्षायामाह—नो न वेदेति वेद च, चकारेण नो शब्देतिशब्दाऽनुवृत्त्या, न वेद ब्रह्मेति नो, वेद ब्रह्मेत्यपि नो, इति सम्बन्धाद्विदिताऽविदिताभ्यामन्यदाचार्योक्तमर्थ सम्वा-दितं भवति । वेद—अवेद चेत्युभयथोक्त्याशास्त्रैकवेद्यत्वमन्यैरुपासकादि वचनैरपि स्वयञ्चाप्यवेद्यत्वमुक्तं भवति, वेद्याऽवेद्यादिभेदरहित सर्वात्मस्व-रूपात्माऽपरोक्षज्ञानादेव मुक्ति र्नान्यथेत्याद्युक्तं भवतीति ॥ २ ॥

विदित अविदित से अन्यस्वरूप ब्रह्म को मैं सुवेद-सुन्दर ज्ञान विषय रूप नहीं समझता हूँ । इससे यह भी नहीं समझना चाहिये कि ब्रह्म हमे विदित नही हुआ है, इससे "विदितंमन्ये" यह प्रथम का कथन अयुक्त है । क्यों कि

"नो न वेद" मन्ये, ब्रह्म को नहीं जानता हूँ, ऐसा भी मैं नहीं मानता = जानता हूँ। और जिससे मैं जानता हूँ कि "अहंवेद" मैं ब्रह्म को जानता हूँ, इससे मेरे अज्ञान के विषयत्व रूप अविदितत्व भी ब्रह्म में नहीं प्राप्त होता है। क्योंकि ज्ञान के अविषय सर्वसाक्षी स्वरूप ब्रह्म को जानता हूँ। श्रुति गत-चकार से ( न वेद ) ऐसा भी सम्बन्ध होता है, कि जिससे अज्ञान कृत आवरण के नाशक वृत्ति के विषय होते भी घटादि के समान प्रकाशक वृत्ति के अभाव से ब्रह्म के अविदितत्व रहता ही है, इस प्रकार से ब्रह्मविषयक वेदन-ज्ञान अवेदन = ज्ञानाभाव का विरोध भी नहीं है, इस आशय से शिष्य कहता है कि "नः" हम श्रोताओं में हम से अन्य भी कोई "तद्वेद" उक्त मेरे वचन को जानेगा जानता है सो "तद्वेद" पूर्वोक्त श्रोत्र के श्रोत्रादि स्वरूप ब्रह्म को जानेगा जानता है, अन्य नहीं, वह वचन कौन है, ऐसी जिज्ञासा होने पर कहा गया है कि "नो न वेदेति वेद च" चकार से नो शब्द और इति शब्द की आवृति = पुनः पाठ करके ( नो वेद ब्रह्म इति न, वेद ब्रह्म इत्यादि नो ) ब्रह्म को नहीं जानते हैं, यह बात नहीं, ब्रह्म को जानते हैं यह भी नहीं, इस प्रकार के सम्बन्ध से आचार्य कथित विदिताविदितान्यार्थ के साथ समन्वय हो जाता है, और "वेद, अवेद च" इस उभयथा कथन से शास्त्र मात्र से वेद्यत्व, स्वयं तथा उपासकादि के वचनों से अवेद्यत्व सिद्ध होता है। वेद्यावेद्यत्वादिभेदरहित सर्वात्मस्वरूप निजात्मा के अपरोक्ष ज्ञान से ही मुक्ति होती है, अन्यथा नहीं इत्यादि यहां उपदेश हुआ है ॥२॥

गुरुशिष्य सम्बादेन सिद्धं प्रतिपादितमर्थं श्रुतिः स्वयमनुवदति—

गुरु शिष्य के सम्बाद द्वारा प्रतिपादित सिद्ध अर्थ का अनुवाद स्वयं श्रुति करती है कि—

**यस्याऽमतं मतं तस्य मतं यस्य न वेद सः।**
**अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥३॥**

यस्य ब्रह्मात्मज्ञस्याऽपरोक्षीकृतसर्वात्मनः सर्वात्मनस्वरूपं ब्रह्म, अमतं=मते बुद्धिवृत्तेरविषयस्वरूपं स्वयं प्रकाशमानं ज्ञानस्वरूपम्–अतएवाऽविज्ञातं ज्ञानविषयत्वेनाऽज्ञातमस्ति, केनापि कर्त्राज्ञानकर्मत्वेनाऽनधिगतमस्ति, तस्य ब्रह्मात्मज्ञस्य ब्रह्म मतम्, विज्ञातं सम्यगनुभूतं वर्तते। यस्य तु भेददर्शिनोऽल्पज्ञस्य मते ब्रह्म मतं, ज्ञातं, तेनान्येन च

विज्ञातं बुद्धिवृत्त्या प्रकाशितं वर्तते। सः बुद्धिवृत्तिविषयत्वेनाऽनात्मज्ञो ब्रह्म सर्वात्मभूतं न वेद, नैव जानाति, भेददर्शित्वात्स सर्वात्मदर्शित्वं न प्राप्नोति। अतो विजानताम्=विशेषेण भिन्नतया जानतामल्पज्ञानाम्, अविज्ञातम्=अननुभूतं ब्रह्म वर्तते। अविजानताम्=बुद्धिवृत्तिविषयत्वेन प्रकाश्यत्वेनाऽपश्यताम्, सर्वात्मदर्शिनां ब्रह्मविज्ञातं वर्तते। भेददर्शी कस्मिश्चित् क्वचिदब्रह्मण्यनात्मन्येव ब्रह्मात्मबुद्धिं कुरुते। तस्याऽतोब्रह्माऽविज्ञातं भवति, तस्मान्मुमुक्षुभि मिथ्यामायिकं भेदं।मिथ्यात्वबुद्धया निराकृत्य सर्वात्मा द्रष्टव्योऽस्तीत्यादि ॥३॥

जो ब्रह्मात्मा को अपरोक्ष स्वयं प्रकाश जान लिये हैं, अतएव, यस्य, जिनके मत में ब्रह्मात्मा, अमत, मति = बुद्धि की वृत्ति के अविषय ज्ञान स्वरूप है, तस्य = उसी आत्मज्ञ को ब्रह्म मत = अनुभूत, सम्यग् ज्ञात है। और यस्य = जिस अल्पज्ञ के मत में ब्रह्म मत = बुद्धिवृत्ति का विषय घटादि के समान है, स = वह अल्पज्ञ = ब्रह्म न वेद = ब्रह्म को नहीं जानता है। क्योंकि, विजानताम्, विशेषरूप से घटादितुल्य बुद्धि वृत्तिविषयरूप से ब्रह्म को जानने वाले को ब्रह्म अविज्ञात = अननुभूत रहता है, अनुभूत=ज्ञात नहीं रहता है। और अविजानताम् , बुद्धिवृत्ति के विषय रूप से विशेष गुणादियुक्तरूप से नहीं जानने वाले शुद्धनिर्गुणात्मदर्शी को ब्रह्म विज्ञात=अनुभूत रहता है। अतः मुमुक्षुको इसी प्रकार से ब्रह्म ज्ञातव्य है॥

भाव है कि घटादि जड वस्तु के ज्ञान से घटाकार वृत्तिद्वारा घटाविषयक अज्ञानांश को, तथा घटादि के ज्ञानाभाव को ज्ञानरूप वृत्ति नष्ट दूर करती है, और वृत्तिगत चिदाभास घटादि को प्रकाशता है, प्रकाश स्वरूप सूर्य का भी जब ज्ञान होता है, तब सूर्याकार वृत्तिसे द्रष्टा के हृदय वृत्ति अज्ञानांश का नाश होता है, चिदाभास से सूर्य अनुभूत होते हैं। श्रुति है कि "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति, मुण्डक० २।२" बुद्धिगत उस ब्रह्म के चिदाभास से ये सूर्यादि सब हमे भासते=ज्ञात होते हैं। दूसरी बात है कि "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्॥ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत" इत्यादि के अनुसार, ब्रह्मात्मा ने पूर्वकल्प के अनुसार चन्द्र सूर्य को रचा, विराट् के मनसे चन्द्र और नेत्र सें सूर्य हुए। अतः सूर्यादि के कारण के प्रकाश से सूर्यादि का प्रकाश होना ठीक ही है परन्तु उक्त सर्वात्मा चेतन ब्रह्म का कोई कारण नहीं है, और स्वयं चेतन के प्रकाश में चिदाभास की आवश्यकता नहीं हैं, तथापि तदाकार वृत्ति से ज्ञाता के अज्ञान की निवृत्ति होती है, इत्यादि॥ ३॥

विज्ञानतामविज्ञातामिति विरुद्धं प्रतिभाति, तथापि तद्ब्रह्म कथं कस्यचित्सम्विदितं स्यादिति जिज्ञासायामाह—

विशेषरूप से जानने वाले को ब्रह्म अविज्ञात रहता है, यह कथन यद्यपि अर्थज्ञ को विरुद्ध प्रतीत होता है, तथापि वह ब्रह्म किसी को सम्विदित = ज्ञात कैसे होगा, ऐसी जिज्ञासा होने पर कहा जाता है कि—

**प्रतिबोधं विदितं मतममृतत्त्वं हि विन्दते।**
**आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ॥४॥**

"बोधं बोधं प्रति=प्रतिबोधम्" इतिविग्रहेऽत्राऽव्ययीभावसमासो वीप्सार्थे वर्तते, तथा च प्रतिबोधं विदितम्=सर्वं बोधं=बुद्धिवृत्यात्मकं ज्ञानं व्याप्य विदितं वृत्तिसाक्षित्वेन ज्ञातं वृत्तीनां सर्वासां प्रकाशकत्वेन-नित्यमनुभूतं स्वयं प्रकाशं ब्रह्म मतं सम्विदितं भवति, सर्वप्रत्ययान्त-रात्मतया प्रत्ययसाक्षित्वेन विदितं मतं ब्रह्म तत् सम्यङ्मतं ज्ञातं भवति, इत्थं विदुषामाचार्याणां मतमपि वर्तते। हि-यत उक्तरीत्या ब्रह्म सम्यग् ज्ञातं भवति, तत् एव तस्य ब्रह्मणो ज्ञानान्मुमुक्षुरमृतत्वं मोक्षं विन्दते= लभते। अमृतत्वप्राप्तौक्रममाह=प्रथमं योगयुक्तादिभिः समाहितेनाऽऽत्मना मनसा, स्वात्मनिष्ठया ध्यानेन वा वीर्यं=अविद्यामोहादिपराभवसामर्थ्यं पूर्णविवेकवैराग्यादि विन्दते प्राप्नोति, ततः सच्छास्त्रगुरूपदेशतः, उक्त हेयोपादेय कार्यकारणविलक्षणस्य ब्रह्मात्मनो विद्यामपरोक्षामनुभवं प्राप्नोति। यतो "नाऽयमात्मा बलहीनेन लभ्यः" अतः प्रथमं बलं प्राप्य पुनर्विद्यामाप्नोति, तया विद्यया ब्रह्मात्मज्ञानेनाऽमृतम्मोक्षं विन्दते, अविद्याया अपसारणेन नित्यमुक्तमात्मानं व्यक्तं करोतीति यावत् ॥४॥

बोधं बोधं प्रति = बोधं ब्रह्म विदित मतम्। घट पदादि के बुद्धि = मनो वृत्तिरूप सभी बोधों ज्ञानों में ब्रह्म विदित = ज्ञात = चिदाभासरूप से व्यक्त होता है, और इसी प्रकार से चिदाभासरूप से ब्रह्म ही मत = अनुभूत = ज्ञात होकर, जीव स्वरूप ब्रह्म अमृतत्व ।।मोक्ष पाता है. और मर्त = होने के लिये प्रथम सत्कर्म भक्ति आदि से विशुद्ध आत्मा = मन से पूर्ण विवेक वैराग्यशमद-मादि रूप वीर्य = बल को जो प्राप्त करता है, उसके बाद ब्रह्मात्मा के अपरोक्षा-नुभव से मत=अनुभूत होकर अमृत=मोक्ष को प्राप्त करता है, अर्थात् चिदा-

भासता को प्राप्त ब्रह्म विद्या से उपाधि को बाधित करके पूर्ण नित्य मुक्त चिद्रूप से स्थिर होता है, जैसे दर्पण के अभाव होने पर प्रतिबिम्ब विम्बरूप से स्थिर होता है, इत्यादि, "मुखाभासको दर्पणे ... " दृश्यमानो मुखत्वात्पृथक-त्वेन नैवास्ति-वस्तु । चिदाभासकोधीषु जीवोऽपि तद्वत् स नित्योपलब्धिस्वरूपो-ऽहमात्मा ॥ १ ॥ यथादर्पणा भाव आभास हानौ मुखं विद्यते कल्पना हीन-मेकम् । तथा धीवियोगे निराभासकोयःस नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमत्मा ॥ २॥

दर्पण में दीखता हुआ मुख का आभासमुख होने के कारण मुख से पृथक् स्वतन्त्र कोइ वस्तु नहीं रहता है, बुद्धि में चिदाभासरूप जीव भी इसी प्रकार-चिदात्मा से भिन्न स्वन्त्र वस्तु नहीं है चिन्मात्र ही सत्य वस्तु है, वह चिन्मात्र नित्यज्ञान स्वरूप आत्मा मै हूँ ॥ १ ॥ जैसे दर्पण के अभाव होने पर अभास की निवृत्ति से भेद की कल्पना से रहित एक ही मुख रहता है, तैसे बुद्धि के वियोग = अभाव होनेपर, जो अभास रहित एक आत्मा रहता है, सो नित्य ज्ञान स्वरूप मैं हूँ ॥ २ ॥ "अभास एव च। ब्रह्मसूत्र अ० २।३।५०" जीवों के व्यावहारिक स्वरूप चिदाभास ही है, सत्यस्वरूप एक ब्रह्म हैं, सो असङ्ग चिन्मात्र विभु है, परन्तु व्यावहारिक स्वरूप के पृथक पृथक् होने से कर्मादि के संकर नहीं होते है. बन्धमोक्षादि की भी व्यवस्था हो जाती है, इत्यादि विस्तारपूर्वक वही ज्ञातव्य है ॥ ४ ॥

आलस्य मोह प्रमादरागद्वेषकुसङ्गादित्यागेनाऽऽध्यात्मिक बलं प्राप्या-ऽत्रैव मानवे लोके ज्ञानाधिकारवति मानवे शरीरेऽमृतार्थिका विद्याऽवश्यं प्राप्तव्याऽस्ति प्रमादादिभिर्विद्याया अप्राप्तौ महाकष्टा संसारगति भवतीति परमकारुण्यवतीव श्रुतिराह—

आलस्य मोहप्रमादरागद्वेष कुसङ्गादि के त्यागपूर्वक पूर्णविवेक विरागादि बल को प्राप्त करके इस मानव लोक में तथा ज्ञानाधिकार युक्त मानव शरीर में ही मोक्षार्थक विद्या की प्राप्ति अवश्य करना चाहिये, नहीं तो प्रमादि से विद्या की अप्राप्ति अवस्था में महा कष्ट प्रद सांसारिक गति की प्राप्ति होती है, परम कारुणिकी तुल्य परमहितैषिणी श्रुति यह कहती है कि—

**इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहाऽवेदीन्महती विनष्टिः ।**
**भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्याऽस्माल्लोकाद मृता भवन्ति ॥५॥**

इति केनोपनिषद् द्वितीयः खण्डः ॥

इह मानवे लोके ज्ञानाधिकारादियुक्ते मानवे शरीरे, चेद्-यदि =उक्तरीत्या कार्यकारणविलक्षणं यः कोऽपि=अवेदीत्=विदितवान्=अहं ब्रह्माऽस्मीति, अनुभूतवान्। अथ तदा, तादृशानुभव काल एवाऽविद्या निवृत्या, तदनुभवानन्तरमेव सत्यममृतं नित्यमुक्तात्मस्वरूपमस्ति = अमृतं प्राप्तं भवति, मानवाऽवतारं च सफलं भवति, इह लोके जन्मादि च। चेन्नावेदीत् = न विदितवान्, तदा महती-दीर्घकालिकी = अनन्ता विनष्टिः, जन्ममरणादिलक्षणा कष्टाऽऽत्मिका संसृति र्भवति। अतो ज्ञानाऽज्ञानयो र्गुणदोषज्ञानवन्तो धीराः=विवेकिनो विद्वांसो भूतेषु भूतेषु चराचरेषु सर्वेषु प्राणिषु वर्तमानं ब्रह्मात्मभूतं सर्वात्मानं ब्रह्म विचित्य=विज्ञाय सर्वात्मत्वेन साक्षात्कृत्य, भूतत्वधर्मादिरहितं नित्यमुक्तमात्मानमनुभूय, अस्माच्छरीरादिलक्षणाल्लोकादविद्याऽऽत्मिकाज्जीवन्नेव, प्रेत्य=अभिमानादि त्यागेन सर्वस्माल्लोकात्पृथक् भूत्वा, लोकेभ्योऽत्युपरतास्तेऽमृताः=जीवन्मुक्ताः ब्रह्मस्वरूपा भवन्ति= "स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति। मुण्डक इति" ॥५॥

इह = इसलोक तथा शरीर में चेत् = यदि कोई = कार्यकारणादि से अन्य नित्यमुक्त शुद्ध ब्रह्म को 'अवेदीत' समझा = अपरोक्ष अनुभव किया कि "अहं ब्रह्मास्मि" मैं शुद्धब्रह्म हूँ। अर्थात् मेरासत्यस्वरूप ब्रह्म है, देहेन्द्रियादि नहीं। अथ=उस ज्ञान से अविद्या की निवृत्ति के अनन्तर = बाद में उस समझने वाले का सत्य नित्यमुक्त स्वरूपही है, वह जीवन्मुक्त ही है, अतः नष्ट नहीं होता है। यदि इस लोक और शरीर में 'अवेदीत' नहीं जाना = सत्यात्मा को विभु ब्रह्म स्वरूप नहीं समझा तो देहादि के अभिमानी होने के कारण उस अज्ञ की महती विनष्टि = जन्ममरणादिरूप महान् विनाश होता है, मानवजन्मादि निष्फल जाता है। अतः ज्ञानाऽज्ञान के गुण दोष को जानने वाले धीर = सत्यधारणाधैर्ययुक्तविद्वान्, भूतेषु भूतेषु, सबचराचर प्राणियों में चिदाभासरूप को भी वस्तुतः ब्रह्मस्वपरू एकात्मा 'विचित्य, विचार्य = अनुभूयच' विचार कर अनुभव करके = अन्वेषण करके, फिर इस मायामय शरीरादिरूप लोक से जीवन काल में ही प्रेत्य = पृथक्–असङ्ग होकर, अभिमान के त्यागद्वारा शरीरादि से भिन्न उपरत होकर "अमृता भवन्ति" जीवन्मुक्ति ब्रह्मस्वरूप हो जाते है "स यो ह चैतत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति" मुण्डक० ३।२।९।

यः = जो कोई पूर्वोक्त पर ब्रह्म को वेद = साक्षात् आत्मस्वरूपजानता है,

स = वह ब्रह्मस्वरूप मुक्त हो जाता है, अतः उनके मोक्ष में कोई विघ्न बाधा भी नहीं होता है ॥ ५ ॥

●

# अथ केनोपनिषद् तृतीयखण्डः

विवेकादियुक्तगलिताऽभिमानवदुत्तमाधिकारिभिर्गम्या विद्योक्ता, सम्प्रति मन्दमध्यमाधिकारिगम्या विद्योच्यते, आख्यायिका सुख प्रतिपत्यर्था ज्ञेया, किञ्च दुर्ज्ञेयब्रह्मज्ञानायाऽधिक यत्न विधानार्था च, अभिमानादि त्यागेन शमादिः सम्पादयितव्यो मुमक्षुभिरित्ययमप्यर्थो लक्ष्यते ह्याख्यायिकया। तथा "नेदं यदिमुपासते" इत्यनेन यद् ब्रह्मण उपासनं निषिद्धमिव प्रत्युक्तम्, तत्सगुणब्रह्मणः कर्तव्यत्वेन प्रतिपादयन्नाह—

विवेकादियुक्त अभिमानादिरहित उत्तम ज्ञानाधिकारियों से प्राप्त करने-योग्यविद्या की कथा प्रथम कही गई है, अब मन्द मध्यम अधिकारियों से प्राप्त करने योग्य विद्या की वार्ता कही जायगी "आख्यायिका" ब्रह्मेन्द्रादि का सम्बाद, सुख से अर्थ ज्ञानार्थक है. और दुर्ज्ञेय ब्रह्मज्ञान के लिये अधिकप्रयत्न की विधि के लिये भी आख्यायिका है, क्यों कि अभिमानादि के त्यागपूर्वक शमदमादि की प्राप्ति मुमुक्षुको करना चाहिये, यह अर्थ भी आख्यायिका से लक्षित = बोधित = ज्ञात होता है। और "नेदं यदिदमुपासते" इस कथन से जो ब्रह्म की उपासना निषिद्ध के सामान = प्रत्युत खण्डित हुई है उस सगुण ब्रह्म की उपासना को कर्तव्य रूप से प्रतिपादन करती हुई श्रुति कहती है कि—

**ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्येऽस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त।**
**त ऐक्षन्ताऽस्माकमेवाऽयं विजयोऽस्माकमेवाऽयं महिमेति ॥१॥**

ब्रह्म ह = पूर्वोक्तं सर्वात्मत्वेन प्रसिद्धं सच्चिदानन्दस्ववरूपमेव ब्रह्म मायाशक्तिमत्वसर्वज्ञत्वयुक्तं सत्, देवेभ्यो देवानां हितार्थाय ह, खलु = देवादि सर्वलोकाऽहितान् क्रूरानसुरान् विजिग्ये। देवेषु सदैवान्तर्यामिरूपेण वर्तमानं ब्रह्म पुरा देवासुर संग्रामे देव द्वारैवासुरान् विजिग्ये, विजितवानसुरान् अन्तर्यामिरूपेण वर्तमानस्य सर्वज्ञस्य सर्वशक्तस्य तस्य

ब्रह्मणो विजये सति, देवा = इन्द्राग्निवायुप्रभृतयोऽमहीयन्तः लोकैः पूजिता अभवन् पूजां प्राप्तवन्तः। ततस्तेवा अन्तर्यामिस्वरूपस्य सर्वात्मनो ब्रह्मणो ज्ञानाऽभावादेव देहादावात्मभिमानवन्तो भूत्वा = ऐक्षन्त = अपश्यन्त विचारितवन्तः, यदस्माकमेव व्यष्टिदेवानामेवाऽयमनुपलब्धो विजयोऽस्ति। अस्मत्प्रभावादेवाऽसुराःपराभूताः। अतोऽस्माकमेवाऽयं महिमा = महत्वं विद्यते नान्यो मत्तो बली पूज्य ईश्वरोवाऽस्ति। अहो मोहमहिमा देवा अपि सत्यसर्वात्मज्ञानं विना यावत्प्रारब्धं विपरीत ज्ञानाऽज्ञानाभ्यां संसारे-भ्रमन्ति भीताश्च भवन्ति, तदावऽन्येषां भ्रमणादौ किं वक्तव्यमस्ति, ततो भेदभ्रमादिनिवृत्तये यथाशक्ति सर्वैरेव यत्नः कर्तव्य इतिश्रुते-राशयः ॥१॥

प्रथम कभी देवासुर संग्राम में पूर्ववर्णित ब्रह्म ही सर्वात्मारूप से प्रसिद्ध ब्रह्म ही क्रूर असुरों को 'देवेभ्यो' देवों के हित के लिये विजिग्ये, = जीता, अर्थात् अन्तर्यामी ब्रह्म देवोंपर अनुग्रह करके उन्हे शक्ति दिया, फिरदेवद्वारा असुरों का पराभव संहार किया, फिर, अस्य, इस ब्रह्म के विजय होने पर, इद्रादिदेव महीयन्त, महत्व पाये पूज्य हुए, फिर, ते, वे देव ब्रह्म के अज्ञान से, (ऐक्षन्त) इक्षता विचार करने लगे, समझे कि यह विजय, अस्माकं, हमारा ही है, हमारे तेज बल के प्रभाव से असुर पराजित हुए हैं, अतः हमारी महिमा "महत्व" है, हमसे अन्य कोई पूज्य या ईश्वर नहीं है इत्यादि ॥

श्रुति का तात्पर्य है कि मोह की महिमा आश्चर्यात्मक है कि जिससे सत्य-सर्वात्मा अन्तर्यामी ब्रह्म के ज्ञान के विना अनन्तशक्तियुक्त अधिकारी देव भी अपने प्रारब्ध पर्यन्त अज्ञानविपरीतज्ञान द्वारा अभिमानी होकर संसार में भ्रमते हैं, भयभीतादि होते हैं तो ब्रह्मज्ञानादि के विना अन्य के भ्रमणादि का क्या कहा जा सकता है, अतः अज्ञान विपरीतज्ञानमोह भ्रमादि की निवृति के लिये अपनी २ शक्ति के अनुसार सब को यत्न करना चाहिये आलस्यादि के वश नहीं होना चाहिये इत्यादि ॥१॥

करू विचार विकार परिहरु, तरण तारणो सोई।
कहहि कबिर भगवन्त भजु नर, द्वितिया और न कोई ॥ १ ॥

देवानामुक्ताभिमानवत्वेऽपि सात्विकत्वेनेश्वरानुग्रहपात्रत्वाद् असुर-पशुविशेषादिवत्सर्वथैवाऽनुग्रहपात्रत्वाऽभावाऽभावत्तेषां हितायेश्वरानुग्रहो वर्ण्यते श्रुत्येति—

देवों के उक्त अभिमानयुक्त होते भी सात्त्विक होने के कारण ईश्वरानुग्रह की पात्रता भी उनमें रहती है, असुर पशु आदि तुल्य सर्वथा अनुग्रहपात्रत्व के अभाव का अभाव रहता है। अतः उनके हितके लिये ईश्वरानुग्रह = कृपा का वर्णन श्रुति करती कि—

**तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव**
**तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥२॥**

तत्—सर्वान्तर्यामिस्वरूपं, ह एव, ब्रह्म, तद्, देवानामभिमानं मिथ्या-ज्ञानं विजज्ञौ विज्ञातवत्। ततो देवा असुरवन्मोहान्धकारे मा पततु, इति कृपयाऽऽलोच्य, तेभ्योऽनुग्रहाय ह-एव, न तु स्वार्थाय, पूर्णकामस्य सच्चिदात्मनः स्वार्थाऽभावात्। ब्रह्म देवानामपि देव पूज्य यक्ष=पूज्यस्वरूपेण प्रादुर्बभूव, तेषमनतिदूरे स्थाने=आकाश प्रदेशविशेषे स्वप्राकट्यं चकाराऽऽकाशस्याऽप्यन्तरात्मत्वात्तत्राप्यन्तर्यामित्वेन सदा वर्नमानत्वात्तत्प्राकट्यं सम्बभूव। किन्तु तत्प्रादुर्भूतं ब्रह्माऽभिमानिनो देवा अभिमानानां त्यागमन्तरा न व्यजानन्तः सम्मुखे प्रत्यक्षमपि न विज्ञातवन्तः, यत्किमिदं प्रत्यक्षोपस्थितं यक्षं पूज्यं वस्तु विद्यते—इति॥२॥

तत् ह, वह सर्वान्तर्यामीस्वरूप ब्रह्म ही = एषां, इन देवों के 'तत' उक्त अभिमान विपरीत मिथ्या ज्ञान को विजज्ञो, समझा = जान गया, तब विचार किया कि ये देव असुरादि के समान मोहान्धकार में न गिरें, अतः कृपाकर के 'तेभ्यो ह' उनके हित = अनुग्रह के ही लिये "प्रादुर्बभूव" उनके सामने कुछ दूर स्थान में पूज्य स्वरूप से ब्रह्म प्रगट हुआ, पूर्ण कामता आदि से स्वार्थ के लिये नहीं प्रगट हुआ, तथापि 'तत्' उस पूज्य प्रत्यक्ष ब्रह्म को भी अभिमानी देव, अभिमान के त्यागे बिना 'न व्यजानन्त' विशेषरूप से नहीं जान सके कि "किमिदं यक्षमिति" यह सामने उपस्थित यक्ष = पूज्य वस्तु कौन वस्तु है, इत्यादि ॥ २ ॥

**तेऽग्निमब्रुवन्=जातवेद एतद्विजानीहि किमिदं यक्षमिति तथेति ॥३॥**

उक्ताऽज्ञानाद्भयकौतुहलाद्याविष्टास्ते=इन्द्रादयो देवा अग्निम्=देवेष्वग्रगामिनं प्रस्तुवनब्रुवनुक्तवन्तः। हे जातवेदः=जातानिवेदांसि ज्ञानानि यस्मात्तत्सम्बोधने जातबोध, हे सर्वज्ञाऽग्ने त्वम्-एतत्प्रत्यक्षोपस्थितं विशेषेण विजानीहि, यत्किमात्मकमिदं यक्षमस्ति, एतदपि देवविशेषोऽस्ति वा सर्वदेवादिभ्यो विलक्षणं किमप्यस्ति अस्माकं मध्ये तेजस्वी त्वमेतज्ज्ञातुमर्हसि एवमुक्तोऽग्निः साऽभिमान एव तथाऽस्त्वित्युक्तवान्॥ ३ ॥

उक्त अज्ञान से भय कौतुहलादि युक्त 'ते' वे इन्द्रादि देव सब, सब देवों के अग्रगामी अग्निदेव की स्तुति करते हुए, अग्निदेव को 'अब्रुवन्, कहा कि हे जातवेद, जात = उत्पन्न हुए हैं वेदम् = ज्ञान जिससे, ऐसा तुम हे ! सर्वज्ञ अग्निदेव ! तुम 'एतद्विजानीहि' इस प्रत्यक्ष-उपस्थित पूज्य को विशेष रूप से समझो = जानो कि "किमिदं यक्षम्" यह यक्ष क्या है, यह भी कोई देव है या सब देव से विलक्षण कोई है। हम सब में आप देजस्वी हो, अतः आप इसको जान सकते हो, ऐसा कहने पर अभिमान सहित अग्निदेव बोले कि "तथाऽस्तु इति" आप सबके कथनानुसार मैं जाकर समझता = जानता हूँ कि कौन है ॥३॥

उक्तरीत्योक्त्वा च—

उक्तरीति से तथास्तु ऐसे कह कर—

**तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीत्यग्निर्वाऽहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥४॥**

तत्=प्रत्यक्षं यक्षं प्रति=अभिअद्रवदग्निः, यक्षसन्निधौगतवान्। तथापि तद् यक्षं प्रष्टुं समर्थोनाऽभवेदग्निः, ततस्तुष्णीभूतं सन्निधावुपस्थित-

मग्निमेव तद्यक्षं ब्रह्माऽभ्यवदत् प्रत्यभाषत् पृष्टवान्-त्वं–कोऽसि किन्नामासि। एवं यक्षेण पृष्टोऽग्निरब्रवीदुक्तवान्–अहमग्निर्वै = अग्निनामतः प्रसिद्धोऽस्मि, तथा जातवेदा जातवेदोनामा वै प्रसिद्धोऽस्मि। उक्तनामद्वयेनात्मानं स्तुवन्नेवाग्निरुक्तवान् ॥४॥

तत् = उक्त यक्ष के प्रति = पास = समीप में 'अभि अद्रवत्' अग्निदेव शीघ्र तुरन्त गये, तो भी उस यक्ष से कुछ पूँछ नहीं सके, अर्थात् आप कौन हो इत्यादि प्रश्न नहीं कर सके, तब पास में चुप = मौन हो कर स्थिर उस अग्नि देव को ही वह यक्ष "अवदत्" पूछा कि आप 'कोऽसि' कौन हो, क्या नाम है ऐसा पूछने पर अग्नि देव बोले कि मैं अग्नि हूँ, अग्नि ही मेरा नाम है। तथा जातवेदानाम भी है। इन दोनों नामों द्वारा अपनी स्तुति करते हुए बोले ॥ ४ ॥

उक्तरीत्याग्निनोक्तेसति तमग्निं ब्रह्माऽपृच्छत्—

उक्त रीति से अग्नि के बोलने पर ब्रह्म पूछा कि—

## तस्मिँ्स्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदँ सर्वं दहेय यदिदं पृथिव्यामिति ॥५॥

तस्मिन्=उक्त प्रसिद्धगुणनामवति त्वयि, तव स्वरूपेण किं वीर्यं किमात्मकं सामर्थ्यं विद्यते, एवं पृष्टोऽग्निरुक्तवान्, यत्पृथिव्यां यदिदं विद्यते तत्सर्वं दहेयमहं दग्धं कुर्याम्, इदमपि च पृथिव्यादिकं जगदनात्मभूतं लोकादिकं सर्वं दहेयमित्थं भूतं सामर्थ्यं मयि विद्यते ॥५॥

उक्त प्रसिद्ध गुण नाम वाले आप में "किं वीर्यम्" कौन सामर्थ्य= शक्ति है। ऐसा पूछने पर अग्निबोले कि "पृथिव्याम्" पृथ्वी पर "यदिदं" जो यह वस्तु है "तत्सर्वं दहेयं" उन सबको मैं दग्ध-नष्ट = भष्म कर दूँ, और "इदमपि" इस पृथिवी आदि स्वरूप सब जगत को भी भष्म कर दूँ। ऐसी शक्ति हममें है ॥ ५ ॥

उक्तरीत्या साऽभिमानमग्निदेवेनोक्ते सति, तदभिमानित्वादिलक्षणस्याज्ञानस्यनिवारणेनाऽमानित्वादिलक्षणस्य पुनश्चाऽऽसुरसम्प्रच्छातनपूर्वकाऽमानित्वलणक्षदैवीसम्पत्प्रापण द्वाराऽग्निदेवस्य श्रेयो विधातुं यक्षो देवः प्रयत्नं कृतवानिति सर्वहितैषिणी श्रुतिराह—

उक्त रीति से अभिमान सहित अग्नि देव के बोलने पर उनके अभिमानित्वादि रूप अज्ञान के निवारण द्वारा, आसुरी सम्पति के निवारण पूर्वक, पुनः अमानित्वादि रूप है दैवी सम्पति की प्राप्ति करने के द्वारा अग्नि देव के श्रेयः ( शुभ ) सिद्धि के लिये यक्षदेव नें प्रयत्न किया। इस अर्थ को सर्वहितैषिणी श्रुती कहती है कि—

**तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति, तदुपप्रेत्याय सर्वजवेन, तन्न शशाक दग्धुं, स तत एव निववृते, नैतदशकं विज्ञातुम्। यदेतद् यक्षमिति ॥६॥**

तस्मै=उक्तसर्वंदग्धृत्वाऽभिमानवतेऽग्निदेवाय, तृणं निदधौ, तत् समीपे तदग्रेशुष्कतृणं स्थापितवद् दत्तवद् यक्षात्मकं ब्रह्म, तदग्रे तृणं दत्वा—उक्तवच्च, यदेतन्मया तवाग्रे स्थापितं तृणं तत् त्वं दह, दग्धं कुरु—इति वचनमुवाच ब्रह्म। तथा यक्षेणोक्तोऽग्निस्तत् तृणं सर्वजवेन=सर्ववेगेन=उपप्रेयाय तृणसन्निधौ गत्वाऽपि तत् तृणं दग्धुं भस्मीकर्तुं न शशाक, शक्तः समर्थो न बभूवाग्निः, ततो गतगर्वः सन् ततस्तस्मात्स्थानात् तुष्णीमेव सोऽग्निर्निववृतेनिवृत्तोऽभूत। इन्द्रादिदेवानां सन्निधौ गत्वाच देवान् प्रत्युवाच, एतत् सम्मुखेऽस्माकमुपस्थितं यद् यक्षं वर्तते तदेतत् किं स्वरूपमिति विज्ञातुं विशेषतोऽवगन्तुं नाऽहमशम्—न शक्तोऽभूवमिति ॥६॥

उस यक्ष देव ने 'तस्मैं' उसक्षधृत्त्व के अभिमानी देव के प्रति दग्ध करने के लिए एक शुष्क तृण 'निदधौ' समीप में धर दिया, और उनसे कहा

कि इसको 'दह' दग्ध करो, तब अग्निदेव, सर्वजव = वेग से 'उपप्रेयाय' उस तृण के समीप जाकर भी "तन्न शशाक दग्धुं" उस तृण को दग्ध करने में समर्थ नहीं हुए। तब अभिमान रहित होकर 'ततएव' उस तृण स्थानसे सो अग्नि चुप होकर निवृत हुए, यक्ष देव से नहीं कुछ कह सके, किन्तु इन्द्रादि देव के समीप में जाकर बोले कि, जो यह सामने उपस्थित यक्ष हैं, एतद्-यह किम् = क्या है, इस अर्थ को मैं विशेषरूप से जानने में समर्थ नही हो सका हूँ ॥ ६ ॥

**अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद्विजानीहि किमेतद् यक्षमिति तथेति ॥७॥**

अथ=अग्नेरुक्तवचनश्रवणानन्तरं वायुं सर्वप्राणात्मकमग्नेरुत्तेजकमग्नेर्बलवन्तं ज्ञात्वा तं देवा अब्रुवन्नुक्तवन्तः, हे वायो! त्वमेतदुपस्थितं यक्षं विजानीहि, यदेतद् यक्षं देवादिषु मध्ये किमपि विद्यते तदन्यद् वा किञ्चिद् विद्यते। इति=एवमुक्तो वायुस्तथाऽस्तु-इत्यङ्गीचकार, यक्षं वेदितुं स्वीकृतवान् ॥७॥

अथ = अग्नि के बचन सुनने के बाद = अनन्तर, वायु को सर्वप्राणात्मक, अग्नि का उत्तेजक अग्नि से वली जानकर, वायु को देव सब कहे कि हे वायो! वायुदेव इस उपस्थित यक्ष को आप समझो कि यह यक्ष "किमस्ति" देवादि में क्या स्वरूप वाला है। ऐसा कहने पर वायु देव बोले कि तथास्तु = आप की आज्ञा का पालन करूँगा ॥ ७ ॥

**तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति, वायु र्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥८॥**

उक्त स्वीकृत्यनन्तरं वायुदेवस्तद्यक्षं प्रति अभ्यद्रवत्-तत्सम्मुखे तत्सन्निधौ प्रापत् गतवान्, ततस्तं स्वसमीपस्थं सन्निधौ प्राप्तं प्रश्ने-

ऽसमर्थं वायुं यक्षतेजसाऽभिभूतं तुष्णीं स्थितं—यक्षात्मकं ब्रह्मैवाऽभ्यवदत्—अपृच्छत् कोऽसीति, किं नामा किं प्रभावोसीति यक्षं ब्रह्म पृष्टवत्। ततो वायुर्यक्षं प्रत्यब्रवीत्—प्रत्युत्तरमुक्तवान्। अहं वै वायुर्वायुनामाऽस्मीति, अन्यच्च मम नाम मातरिश्वाऽस्ति। अतो मातरिश्वा= मातरिश्वनामा वै मातर्यन्तरिक्षे श्वयति गच्छतीति तथा नामाऽस्मीत्यब्रवीद् वायुः ॥८॥

तथास्तु इस उक्ति के बाद, वायुदेव तत् उस यक्ष के प्रति—अभिद्रवत्= यक्ष के समीप में प्राप्त हुए, परन्तु पूछने में असमर्थ उस वायु देव को यक्ष देव ने ही पूछा कि आप कौन हो ? आप का नाम क्या है. आप में क्या प्रभाव है, इत्यादि। तब वायु देव बोले कि वायु नाम वाला मैं हूँ, और 'मातरिश्वा' मातरि = अन्तरिक्ष में = श्वयति = चलै, सो मातरिश्वा कहा जाता है। अतः अन्तरिक्ष गामी मैं हूँ। इत्यादि ॥ ८ ॥

उक्तविधा वायुनोक्ते सति यक्षं ब्रह्माऽपृच्छत्—

उक्त रीति से वायु के कहने पर यक्ष—ब्रह्म पूछा कि—

**तस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदँ सर्वमाददीयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥९॥**

तस्मिनुक्तप्रसिद्ध नामवति त्वयि वायौ किं वीर्यं विद्यते, पृष्टोवायुरब्रवीत् पृथिव्यां यदिदं चराचरात्मकं विद्यते तत्सर्वमहमाददीयं, इदं च चराचराऽऽधारभूतं पृथिव्यादिकमप्याददीयं गृहीत्वा चान्तरिक्षे गन्तुं शक्नोमीति ॥९॥

तस्मिन् = उक्त नाम वाले तुम वायु में कौन वीर्य शक्ति है, ऐसा पूछने पर वायुदेव बोले कि पृथ्वी में "यदिदं" जो यह जड़-चेतन वस्तु है, उन सबको मैं "आददीयं" ग्रहण करूँ, और 'इदं' यह जो सब का आधार

स्वरूप पृथ्वी आदि हैं। उनको भी ग्रहण करूँ और ग्रहण करके अन्तरिक्ष में भ्रमण करूँ ऐसा मेरा वीर्य है ॥ ६ ॥

**तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति, तदुपप्रेयाय सर्वजवेन,**
**तन्न शशाकाऽऽदातुं, स तत एव निववृते नैतदशकं**
**विज्ञातुं यदेतद् यक्षमिति ॥१०॥**

तस्मै=उक्तरीत्या स्वसामर्थ्यमुक्तवते वायवे तृणं निदधौ दत्तवान्, तत्समीपे निहितवद् धृतवद् ब्रह्म, उवाच च यदेतत्तृणमादत्स्व, गृहाणेति, एवमुक्तो वायुः सर्वजवेन तत्तृणमुपप्रेयाय, तृणसन्निधौ गतवान् तथापि तत्तृणमादातुं न शशाक=नाऽशकत्। ततः स वायुस्तस्मात्तृणस्थानादेव निववृते, यक्षं प्रति नागमदिति। निवृत्तः सन् देवान् प्रत्युक्तवान्, यदेतद् यक्षं तत्स्वरूपमेतद्विज्ञातुमहं नाऽशकमित्यादि पूर्ववत् ॥१०॥

तस्मै = उक्तरीति से स्वसामर्थ्य को कहने वाले वायु के प्रति 'तृणं निदधौ, तृण को अर्पण किया, वायु के पास में धर दिया, और कहा कि इस तृण को "आदत्स्व" आदान=ग्रहण करो, तब वायु देव, सब वेग से तृण के पास में गये। परन्तु उस को ग्रहण करने के लिये समर्थ नहीं हुए, तब, "स' वह वायु यक्ष के पास में नहीं गये, किन्तु उस तृण के स्थान से ही निवृत्त हुए, और निवृत्त हो कर देवों के प्रति कहा कि जो यह प्रत्यक्ष यक्ष हैं, उसको विशेषरूप से जानने के लिये मैं समर्थ नहीं हो सका ॥ १० ॥

**अथेन्द्रमब्रुवन् मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद् यक्षमिति,**
**तथेति तदभिद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥११॥**

अथ वायुनास्वाशक्तिप्रदर्शने कृते तदनन्तरमिन्द्रं देवपतिमतिबलवन्तं ज्ञात्वा देवास्तमिद्रमब्रुवन् प्रोक्तवन्तः, हे मघवन् देवराजेन्द्रः त्वमेतदुपस्थितं यक्षं विजानीहि, यत्किमेतद् यक्षमस्तीति, ततो मघवापि स्व-

सामर्थ्यमधिकं मन्यमानः सन् तथास्त्वित्युक्त्वा तद्यक्षं प्रति सोऽभ्यद्रवत्, यक्षाभिमुखे तत्समीपेऽगच्छत् । ततस्तदभिमान नाशनाय, यक्षं तेनेन्द्रेण सह सम्भाषणमप्यग्निवायुवदकृत्वा तस्मादिन्द्रात्तिरोदधे, तिरोहितमभूत् ॥११॥

अथ=वायु के अशक्ति प्रदर्शित करने पर, देवपति इन्द्र को बली जानकर, देव सब इन्द्रदेव को कहे कि हे मघवन्, आप, एतत्=इस यक्ष को विशेषरूप से समझो कि यह यक्ष कौन है, तब इन्द्र भी तथास्तु, वैसा ही हो, ऐसा कहकर "तदभिद्रवत" उस यक्ष के समीप में गये । तब उनके अभिमान को नष्ट करने के लिये उन के साथ, अग्निवायु के समान संभाषण=वार्ता भी नहीं करके यक्ष उस इन्द्र से तिरोहित हो गया ( छिप गया लुप्त हो गया ) ॥ ११ ॥

इन्द्रस्योक्तरीत्याऽनादरे जाते निवृत्ताऽभिमानः सन्नपि तदन्यदेवाद्यपेक्षयेन्द्रस्यविवेकित्वात्प्रजापत्तेश्च शिष्यत्वाद् धैर्यमवलम्ब्य जिज्ञासया स तस्मिन् प्राप्तदेशे यक्षं ध्यायन् तस्थावित्याद्याशयेन श्रुति र्भगवती प्राह—

इन्द्र के उक्तरीति से अनादर होने पर अभिमान की निवृत्ति से निराभिमान होता हुआ भी, अन्यदेवादि की अपेक्षा विवेकी तथा प्रजापति के शिष्य होने के कारण धैर्य धारण करके जिज्ञासा सहित, यक्ष के ध्यान करते हुए, उस प्राप्त देश में ही स्थिर रहे, निवृत्त नहीं हुए, इत्यादि आशय से श्रुति कहती है कि—

**स तस्मिन्नेवाऽऽकाशे स्त्रियमाजगाम, बहुशोभमानामुमां हैमवतीम् । ताँ्होवाच किमेतद् यक्षमिति ॥१२॥**

इति केनोपनिषदतृतीयखण्डः समाप्तः ॥ ३ ॥

❀

स इन्द्रस्तस्मिन्नेवाऽऽकाशे=प्राप्ताऽऽकाशप्रदेशे तस्थौ। अग्नयादिवत्तस्मात्स्थानान्ननिववृते, तत इन्द्रस्य धैर्येण भक्तया च प्रसन्नान्तर्यामिनो यक्षस्य कृपाशक्तिस्वरूपा विद्याऽत्मिका स्त्री तस्मिन् यक्ष तिरोधानात्मक एवाकाशे प्रादुरभूत्, तां दृष्ट्वा स इन्द्रस्तामुमां महेश्वरपत्नीमिव वर्तमानां हैमवतीम्–हेम=सुवर्णकृताऽऽभूषणवतीम्, यद्वा हिमवतोऽपत्यभूतां पार्वतीमिव शोभमानामतिशोभायुक्तां स्त्रियमाजगाम, तस्याः सन्निधाविन्द्रोऽगमत्। ताञ्च ह प्रकटीभूतामिन्द्र उवाच=पप्रच्छ=यदेतद् यक्षं दृष्टवानस्मि तत् किमात्मकं वर्तते सर्वज्ञा त्वमभिमता तद् यक्षं मह्यं ब्रूहीति ॥१२॥

स = सो इन्द्र = जहां गये उसी आकाश प्रदेश में स्थिर रहे, अग्नि वायु के समान वहां से निवृत्त नहीं हुए = लौटे नहीं, तब इन्द्र के धैर्य और भक्ति प्रेम अन्तर्यामी यक्ष ब्रह्म की कृपा स्वरूप विद्यात्मक बहुत शोभायुक्त हैमवती= हिमावान् की पुत्री पारवती उमा तुल्य, या सुवर्णकृत भूषणवती तुल्य स्त्री उस यक्ष के अन्तर्धानरूप आकाश प्रदेश में प्रगट हुई, फिर इन्द्र उस स्त्री के समीप में "आजगाम" प्रेमपूर्वक गये, और "ताँ हो वाच" उस प्रकट स्त्री के प्रति बोले, उससे पूछा कि—"किमेतद यक्षमिति" जिस को मैं देखा हूँ, यह कौन है, तुम सर्वज्ञा हो, उसयक्ष के स्वरूप को मुझसे कहो ॥ १२ ॥

●

# अथ केनोपनिषद्

## चतुर्थ खण्डः

**सा ब्रह्मेति होवाच, ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति । ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥१॥**

सा=इन्द्रेण पृष्टाऽतिशोभमाना विद्याऽधिदैवभूतास्त्रीह=किल, सत्यवचनामिदं प्रत्युवाच=कथितवती, यत्त्वया पृष्टं यक्षं तत् सत्यं सर्वज्ञं ब्रह्मास्ति, तस्य वै ब्रह्मणो विजयेऽसुराणामेतत्पराभवे । एतदितिक्रियाविशेषणार्थमिति । ततो ब्रह्मणा एतद्विजये सति यूयं देवा महीयध्वम्, महत्त्वं तन्निमित्तकं लभध्वम् । स्वतन्त्र स्वकीय विजयाऽभिमानं त्यजथ, इति=उक्तरीत्या स्त्रिया कथिते सति, ततो ह एव, तद्वचनादेवेन्द्रो यक्षं ब्रह्मेति विदाञ्चकार, न स्वातन्त्र्येण ब्रह्म ज्ञातुमशकत् । यदा देवराजेन्द्रेणापि ध्यानादिकं विना सत्यं ब्रह्म नावगतमभूत । तदाऽन्यैः कथं ध्यानादिकं विनाऽवगतं भविष्यति=इति तदर्थमवश्यं ध्यानविचारादिकं कर्तव्यमस्तीत्यभिप्रायोऽत्र वर्तते ॥१॥

सा उमानामिका हैमवती स्त्री इन्द्र के प्रति निश्चित सत्यार्थ ही, उवाच, बोली (कही) कि, जिसको आपने देखा था, वह सत्य ब्रह्म था । और आप देवों का जो असुरों के साथ संग्राम हुआ था, उसमें ब्रह्म ही असुरों का पराभव किया था । अतः यह विजय वस्तुतः ब्रह्म का ही हुआ है, आप सब इस ब्रह्म के विजय होने पर, उस विजय में ही "महीयध्वम्" महत्त्व महिमा का लाभ ( प्राप्त )

करो, स्वतन्त्र अपने विजय के अभिमान को त्याग दो तो 'ह एव, उक्तरीति से उमा के कहने ही पर, इन्द्र उसके वचन से ही "ब्रह्मेति विदाञ्चकार" वह यक्ष ब्रह्म था इस प्रकार समझ=जान पाये, स्वतन्त्र नहीं।

जब इन्द्रादि देव भी ध्यानविचारादि के बिना सगुण ब्रह्म को भी स्वतन्त्र नहीं समझ पाते हैं, तो अन्य कोई ध्यानादि के बिना कैसे समझेगा, अतः ब्रह्मात्म ज्ञान के लिये गुरु शरण में जाकर श्रवण विचारादि अवश्य कर्तव्य है, यह श्रुति का तात्पर्य है ॥ १ ॥

यस्मादग्निवाय्विन्द्रा देवा ब्रह्मणः सम्वाददर्शादिना ब्रह्मणः सामीप्यं-गतवन्तस्तस्मात्तेषामन्यदेवादिभ्यः श्रैष्ठ्यमाह श्रुतिः—

जिससे अग्नि वायु और इन्द्रदेव ब्रह्म के साथ सम्बाद ब्रह्म के दर्शनादि से ब्रह्म की समीपता को प्राप्त किये। अतः इनमें अन्य देवों से श्रेष्ठता है, इस अर्थ को श्रुति कहती है कि—

**तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवाऽन्यान् देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुस्ते ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥२॥**

तस्माद्वै=उक्तब्रह्मणा सह सम्बादादित एव, एते=अग्निवायवादि-देवा अन्यदेवान् वरुणादीन्, अतितरामिव,ताननतिक्रम्य तेभ्योऽतिश्रेष्ठ-त्वेन वर्तमाना इव वर्तन्ते जनैश्च तथा दृश्यन्ते। ते हि यतोऽग्निवायुरिन्द्रश्च= एतद् यक्षं ब्रह्म नेदिष्ठिम्—अतिसन्निधौ गतमन्तिकस्थंमन्तिकतमं प्रियतमं पस्पृशुः स्पृष्टवन्तो वचन दर्शनादिना (नेत्रादिना) इति। ते च हि यस्मादेनत् प्रथमो ब्रह्मेति विदाञ्चकार प्रथमः प्रथमाः प्रधानाः सन्तो विदाञ्चक्रुः। प्रथमं वा विदाञ्चक्रुस्तस्मात्तेऽन्येभ्यो देवेभ्यः श्रेष्ठतमा बभूवुरिति ॥२॥

तस्माद्वै=पूर्ववर्णित ब्रह्म के साथ सम्वादादि से ही एते, ये अग्नि वायु और इन्द्र नामक तीन देव, अन्य वरुणादि देवों को अतितरामिव, अतिक्रमण

करके मानो रहते हैं। वरुणादि से अति श्रेष्ठ के समान वर्ताव=व्यवहार करते हैं, और लोक से भी वैसा ही माने जाते है, ते हि, जिससे वे अग्नि आदि देव, नेदिष्टं, अत्यन्त निकट=समीप में स्थिर "एनत्" इस ब्रह्म को बनच दर्शनादि=नेत्रादि द्वारा "पस्पृशुः" स्पर्शकिये, और यतः ते=वे अग्नि आदि, अन्य की अपेक्षा प्रथमो, प्रथमं, पहलें, (विदाञ्चकार=विदाञ्चक्रुः) समझ सके कि यक्ष=पूज्य ब्रह्म है। अथवा प्रथमो=प्रथमाः=प्रधानाः सन्तः, सर्वदेवसे प्रधान होते, ब्रह्म को भी समझे। अतः अन्यदेव से अतिश्रेष्ठ हुए॥ २॥

यस्मादग्निवायू अपीन्द्रवचनादेव यक्षं ब्रह्म विज्ञातवन्तौ, इन्द्रस्तु प्रथमेव=उमावच्छोभमानास्त्रीवाक्याद् यक्षं ब्रह्म प्रज्ञातवान्, तस्मादिन्द्रस्याग्निवायुभ्यामपि प्रधान्यं श्रुतिराह—

अग्नि और वायु देव भी इन्द्रदेव के बचन से ही यक्ष को ब्रह्म समझ सके स्वयं नहीं, और इन्द्रने तो प्रथम ही उमातुल्य स्त्री के वचन से ब्रह्म को समझा, अतः इन्द्र की अग्निवायु से भी प्रधानता को श्रुति कहती है कि—

**तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवाऽन्यान् देवान् सह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुस्ते स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥३॥**

तस्मात् प्रथमज्ञानादेवाऽन्यान् देवान्-अग्निवायुसहितान् प्रति गुरुत्वं प्राप्तवानिवेन्द्रोऽतितरामिवाऽन्यान् (देवान्) प्रत्यशेरते इवातिश्रेष्ठ इवाऽतिपूज्य इव स तानतिक्रम्य वर्तते। हि यतः स इन्द्र एनद् यक्षं नेदिष्ठमत्यन्तिकस्थं पस्पर्श प्रज्ञातवान् स्त्रीवाक्यात्। हि यस्माच्च प्रथमः पूर्वमेव प्रधानः सन् देवपतिः सन् पुनरपि प्रथमं यक्षं ब्रह्मेति स्त्रीदेवी वक्याद्विदाञ्चकार ततोऽतिपूज्योऽभवत् ॥३॥

तस्माद्वै, उक्तसर्वापेक्षा प्रथम ज्ञान से ही, इन्द्रदेव, अन्यदेवे के प्रति "अतितरामिव" अतिश्रेष्ठ गुरुत्व प्राप्त के समान रहते हैं। अग्निवायुसहित

सब देवको अतिक्रमण करके सर्वोपरि वर्तते हैं। क्यों किस=वह इन्द्र अति-निकटस्थ इस पूज्य ब्रह्म का स्पर्श किया। और प्रथम=देवराज=प्रधान होते, प्रथम ही यक्ष को ब्रह्म समझा, स्त्री वचन से प्रथम समझने से, श्रद्धाभक्ति आदि युक्त अति पूज्य हो गये॥ ३॥

उक्त ब्रह्मणोऽधिदैवोपासनप्रकारं श्रुतिराह—

उक्त पूज्यब्रह्म के अधिदैव उपासना की रीति को श्रुति कहती है कि—

**तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्यु तदा इतीन्नयमीमिषदा इत्यधिदैवतम् ॥४॥**

तस्य यक्षात्मकस्य ब्रह्मण एष वक्ष्यमाणा आदेश उपमयोपदेशो वर्तते, निरूमस्यापि ब्रह्मणो येनोपमानेनोपदेशः सम्भवति, सोऽयमादेश सम्भवति, सोऽयमादेश उपदेशोऽग्रे कथ्यते श्रुत्येति। किं तदुपमानमिति चेत्कथ्यते, यदेतत् प्रसिद्धं लोके विद्युतो व्यद्युतद् व्युद्योतनं प्रकाशनं तद्वद्ब्रह्मणो विभोर्नित्यस्य क्षणिकं प्रकाशनमनुपन्नमपि, ब्रह्मण इन्द्राग्रे व्यद्युतदा=अत्राऽऽकार इवार्थकः, व्यद्युतद विद्योतनार्थकः, तथा च ब्रह्मे-न्द्राग्रे विद्युदिव विद्योतनं कृतवत्। तद्वदेव च तिरोहितभूत्ततस्तथैवो-पास्यमभूदिति। अन्यच्चोपासनं वर्तत इत्याह श्रुतिः। इत् न्यमीमिषदा ३ इति। अत्र इत् शब्दः पूर्वणोपमानेन समुच्चयार्थकः आ इवार्थकः, णिच् प्रत्ययः स्वार्थे वर्तते, तथा च यथा विद्युतो व्युद्योतनेन चक्षु र्न्यमी-मिषद्=निमेषं कुरुते, तद्वदेव ब्रह्मणः प्रकाशेन निमेषं कृतवन्तो देवा ब्रह्म च तेषां नेत्रेषु निमेषं कृतवदिव, ततश्चक्षुषः स्वविषयं प्रकाशस्य तिरोभाव इवाऽभूदिति चाधि दैवतं ब्रह्मण उपासनार्थमुपमानदर्शनं वर्तते इति॥४॥

तस्य=उक्त पूज्य ब्रह्म का, एष, वह आगे वर्णित, आदेश=उपमाद्वारा उपदेस है, अर्थात् उपमारहित ब्रह्म का भी जिस उपमा से उपदेश हो सकता है, सो उपमारूप आदेश=उपदेश आगे कहा जाता है। वह उपमा=उपमान क्या

है, सो कहा जाता है कि जो यह लोक में प्रसिद्ध विद्युत का, व्यद्युतद, विद्योतन=प्रकाशन=चमक होता है, उसके समान ही विभुनित्य प्रकाशस्वरूप ब्रह्म का अनुपपन्न=अयुक्त भी क्षणिक प्रकाशन इन्द्रके आगे व्यद्युतदा, विद्योतन के समान हुआ। अर्थात् इन्द्रके आगे=सामने ब्रह्म ने विद्युत के समान विद्योतन=प्रकाश किया, और विद्युत के समान ही तिरोहित हो गया। अतः विद्युत तुल्यही उपास्य ध्येय=चिन्तनीय ब्रह्म हुआ। अन्य भी उपासना है, सो श्रुति कहती है "इत् न्यमीमिषदा ३ इति" जैसे विद्युत के विद्योतन से नेत्र = "न्यमीमिषद्" निमेष = पलकबन्द, करता है, तैसे ही ब्रह्म के प्रकाश से देव सब निमेष किये, आँखमुंद लिये और ब्रह्म हो मानो उनके नेत्रों में निमेष किया = कराया कि जिससे नेत्र के स्वविषयप्रकाश का तिरोभाव सा हो गया, यह भी ब्रह्म के उपासनार्थक अधिदैवत उपमान प्रदज्ञान है॥ ४॥

चक्षुषः प्रकाशस्याभिभावकं विद्युत्प्रकाशमिव देवनेत्र प्रकाशाभिभावकं तेषां नेत्रेषु निमेषकारकं क्षणमात्रमभिव्यक्तं ब्रह्म देवोपास्यमुक्त्वाऽधुना प्रत्यगात्मत्वेन व्यक्त ब्रह्मण उपासनप्रकारं श्रुतिराह—

चक्षु के प्रकाश को अभिभव करने वाला विद्युत प्रकाश के समान, देव नेत्र के प्रकाश को अभिभवकरसेवाला, देवनेत्रों में निमेष करनेवाला क्षणमात्र अभिव्यक्त ब्रह्म, देव के उपास्य चिन्तनीय है। इस अर्थ को प्रथम कह कर, अब सब के प्रत्यगात्मा = अन्तरात्मा रूप से व्यक्त ब्रह्म की उपासना की रीति को श्रुति कहती है कि—

**अथाऽध्यात्मं यदेतद् गच्छतीव च मनोऽनेन**
**चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं संकल्प ॥५॥**

अथ=अधिदैवतोपसनानन्तरम्—अध्यात्म=प्रत्यगाऽऽत्मदिषय आदेश उपमोपदेशः कथ्यते। इत्याह श्रुतिः। मिमुपमानं तदाह—यदेतदस्माकं जनानां

मन उक्तलक्षनां ब्रह्म प्रति गच्छतीव प्रप्नोतीव ब्रह्मविषयी करोतीव, वस्तुतो ब्रह्मणोऽविषयत्वान्नमनो विषयी करोतिति चिन्तयेत्, यतो येनाऽऽ-हुर्मनोमतप्युिक्तम् । गच्छतीव न तु गच्छति मनसोऽपि मनस्त्वादात्मभूत-त्वाद् ब्रह्मणाः यद्=यस्माच्चानेन मनसा एतद ब्रह्म=उपस्मरति कश्चिद् विद्वान=समीपतः स्वाऽऽत्मत्वेन स्मरति कश्चित्साधकोऽहं ब्रह्माऽस्मीत्यादि । तस्मात्तद्गच्छतीवेत्युच्यते । किञ्चाऽभीक्ष्णं पुनः पुनः संकल्पः संस्मरणा-दिकः साधकस्याऽनेनः मनसैव भवति । मन उपाधिकस्य च ब्रह्मणः संकल्पा-दिकः सम्भवति न निरूपाधिकस्य, अतः सोपाधिकस्यैव आदेशस्तथैव मन्द-बुद्धिभि र्ब्रह्मोपास्यमिति ॥५॥

अथ—उक्त अधिदैवत उपासन के अनन्तर = अध्यात्म = अन्तरात्म विषयक उपासना कही जाती है, उपासना के आदेश = उपदेश है, कि किस उपमा वाला अध्यात्म उपासना है, सो दर्शाया जाता है कि, त्यदेतत, जो यह हम सबके मन है, सो सदा मानो उक्तलक्षण वाले ब्रह्म के प्रति सुषुप्ति में गच्छति, जाता है, ब्रह्म को प्राप्त करता है, ब्रह्मस्वरूप आनन्द का कभी अनुभव करता है, परन्तु ब्रह्म स्वयं प्रकाश है, मन का भी विषय नहीं है। क्यों कि प्रथम कहा गया है कि "येनाहुर्मनोमतम्" जिस ब्रह्म से मन = मत ज्ञात होता है, ऐसे गुरुआचार्य कहते हैं, अतः ब्रह्म के प्रति मन जाते हुए के समान प्रतीत है, परन्तु नहीं जाता है, ऐसा ही समझना चाहिये, क्यों कि मन का भी मन = आत्मा ब्रह्म को कहा गया है। और 'यद, जिससे 'अनेन, इस मन से ही कोई ज्ञानी ब्रह्म के मानो निकट जाकर ब्रह्म का स्मरण ध्यान करता है, कोई साधक = उपासक स्मरण करता है, अतः मन मानो जाता है, यह कहा जाता है। और अभीक्ष्णं पुनः पुनः = बारम्बार 'अनेन, इस मन से ही संकल्पादि होते हैं, मन उपाधिसहित ब्रह्मात्मा में संकल्पादि हो सकते हैं, निरूपाधिक में नहीं। अतः उपासना के लिये सोपाधिक का उपदेश है, कि ब्रह्म भी मानो सर्वत्र गन्ता संकल्पादि कर्ता है. सर्वात्मा होने से सर्वत्र प्राप्त है, इत्यादि ॥ ५ ॥

उक्तस्य ब्रह्मणःउपासने गुणफले अभिधीयेते—

उक्त ब्रह्म की उपासना में गुण फल कहे जाते हैं कि—

**तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाऽभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥६॥**

तत् प्रत्यगात्मस्वरूपं ब्रह्म, ह=खलु, तद्वनं नाम, तत्=तस्य प्राणिजातस्य वनं=वननीयं संभजनीयं वर्तते प्रत्यगात्मभूतत्वात्। ततस्तद्वनं नाम=प्रख्यातं ब्रह्मेति। यतश्च तद्वननाम्ना प्रसिद्धमतस्तद्वनमिति नाम्नैव गुणाभिधानेन=गुणनिमित्तक नाम्ना ब्रह्मोपासितव्यं चिन्तनीयमस्ति। उपासकस्य फलमाह=स उपासको यः कश्चिदेतत्=मनःसंकल्पादिनिमित्तं ब्रह्म, एवं वेद=उक्त गुणनामकमुक्तरीत्योपास्ते चिन्तयति, एनमुपासकं, ह खलु, सर्वाणि भूतानि=अभि सं वाञ्छन्ति। ब्रह्मेव स सर्वभूतप्रियः सर्व प्रर्थनाविषयो भवतीति ॥६॥

तत्=वह अन्तरात्मा स्वरूप ब्रह्म ही, 'तद्वनं नाम, ( वनसनसंभक्तौ ) सबके अन्तरात्मा होने से सबके भजन चिन्तन ध्यान के योग्य प्रसिद्ध है अतः, 'तद्वनं' वह ब्रह्म ( वनं ) भजनीय=भजन योग्य है। इस प्रकार से नाम गुण के चिन्तन पूर्वक ( उपासितव्य ) उपासनीय=उपासना के योग्य उपास्य ध्येय है। 'यः' जो कोई, 'सः' उपासक 'एतद्, मन के संकल्पादि के निमित्त=कारण स्वरूप इस ब्रह्म को 'एवं वेद' उक्त नाम गुण युक्त को उक्त रीति से उपासना चिन्तन करता है। 'एनं' इस उपासक को सब प्राणी "अभिवाञ्छन्ति" सर्वथा प्राप्त करना चाहते हैं, अर्थात् वह उपासक ब्रह्मात्मा के समान सबका प्रिय प्रार्थनीय हो जाता है। आत्म तुल्य हो जाता है। अतः यह उपासना कर्त्तव्य है इत्यादि ॥ ६ ॥

पूर्वोक्त विद्या स साधनासफला चोक्तस्वरूपैवाऽस्ति, यद्वा तस्याः फलोपकारकं किञ्चित्साधनमन्यदपि वर्तते। यद्यस्ति किञ्चिद्रहस्य साधनं तच्छिष्येनाऽपृष्टमपि दयालुना गुरुणा वक्तव्यमस्तीत्यभिप्रायेण शिष्य आह—

साधन फल सहित वर्णित विद्या, वर्णित मन्त्र ही है, या उस के फल के उपकारक कोई साधनान्तर भी है, यदि कोइ रहस्य साधनान्तर हो, तो वह शिष्य के नहीं पूछने पर भी दयालु गुरु को कहना ही चाहिये, इस आशय से शिष्य कहता है कि—

**उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मी वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥७॥**

भो सद्गुरो ! उपनिषदं=रहस्यं चिन्तनीयं संभजनीयमुक्तनामवद् यद्यन्यदपि किञ्चिद् विद्यते, विद्यायाः साधनान्तरं सर्वशिष्यैरवश्यमनुष्ठेयं वर्तते तत्सर्वं ब्रूहि कथय, इत्येवं शिष्येण पृष्टो गुरुराह—उक्ता साधनान्तर सहायकान्तरनिरपेक्षा या विद्या मोक्षसाधिका भवति, सा उपनिषदात्मिका विद्या ते=तव मयोक्ता-कथिता श्रोत्रस्य श्रोत्रमित्यादिना। एषा विद्या ब्राह्मी ब्रह्म सम्बन्धिनी वर्ततेऽतो ब्रह्मात्म विषयामविद्या शातयित्वा ब्रह्मगमयतीत्युपनिषत् कथ्यते, तां ब्राह्मीं विद्यामुपनिषदं वाव ते तुभ्यमब्रूम ऊक्तवन्तो वयम्। इत्युपसंहारो विद्याया इह वर्तते ॥७॥

भो–हे सद्गुरो ! उपनिषद्=रहस्य=चिन्तनीय, यदि अन्य भी कोई विद्या का साधन=शिष्य का कर्तव्य है, तो वह भी 'ब्रूहि' कहो। ऐसा पूछने पर गुरुजी ने कहा कि, उक्त साधनों से साधनान्तर की अपेक्षा रहित उपनिषद्=रहस्य स्वरूप, ब्राह्मी = ब्रह्मबोधक विद्या "त्वं मया उक्ता" मुझसे तुझे कही गई है, कि "श्रोत्रस्य श्रोत्रम्" इत्यादि ॥ अतः 'उपनिषदं ते वाव' उपनिषद्विद्या तुम्हारे लिये हम = अब्रूम, कह चुके हैं, अब वक्तव्य नहीं है, इति ॥ ७ ॥

विद्यायाः फलोपकारकं साधनान्तरं न विद्यते किन्तु विद्यायाः स्वरूपसाधकं साधनं तप आदिकं विद्यते-इत्याद्याशयेनाऽऽह—

विद्या के फल में उपकारक साधनानन्तर नहीं है, किन्तु विद्या के स्वरूप के साधक = कारण तप आदिक हैं, इस आशय से श्रुति कहती है कि—

**तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥ ८ ॥**

तस्यै=उक्ताया ब्राह्मीविद्यायाः स्वरूपसिद्धयै तप आदिसाधनानि भवन्तिः। तत्र तपः कायेन्द्रियमनसां संयमात्मकं ब्रह्मचर्याऽहिंसादिस्वरूपं-ज्ञेयम्। दमोमन इन्द्रियदमनात्मकं भवति। कर्म=श्रौत स्मार्तात्मकमग्निहोत्र-दानादिलक्षणं भवति। इति=अन्यदपि स्वाध्याय जपादिलक्षणं कर्म विद्यते तथाऽमानित्वाऽदम्भित्वादिलक्षणं साधनं विद्यते, एतानि विद्यास्वरूपसिद्धयै-साधनानि भवन्ति। भ्रमसंशयादिनिवारणादि द्वारा प्रतिष्ठाः=पादावि-व विद्यायाश्चिरनिश्चितस्थितिसाधनानि च भवन्ति। एवं सर्वेवेदाः सर्वाङ्गानि-च विद्ययाः स्वरूपसाधकानि प्रतिष्ठात्मकानि च मवन्ति। वेदादिज्ञानसाध-नानां श्रवणमननादितः सर्वा विद्याः संजाताः सन्तिष्ठन्तीति भावः। सत्यं सत्यभाषणं वाङ्मनः कायेषुचाऽकौटिल्यममायित्वं विद्याया आयतनं निवास-स्थानं विद्यते। सत्येसति हि विद्या वर्तते "न येषुजिह्ममनृतं न माया च, प्रश्नो प० १।१६॥ यत्र कपट मिथ्याभाषण मायायाअभावो वर्तते तत्र विद्या तिष्ठतीति।

"सत्येन लभ्यस्तपसाऽ ह्येष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन वह्मचर्येण नित्यम्। अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥ १॥ सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाऽऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥२॥ मुण्डको० ३।१।५-६॥८॥

तस्यै=उक्त ब्रह्म विद्या के स्वरूप सिद्धि ( उत्पत्ति प्राप्ति ) के लिये तप, दम कर्म 'इति' साधन होते हैं, और विद्या की स्थिति के लिये पाद=चरण के समान प्रसिष्ठा होते हैं, उत्पन्न विद्या तपादि से रक्षित रहती है, तहाँ शरीरेन्द्रियमन के संयम=वशीकरण ब्रह्मचर्य अंहिसादि तप कहे जाते है, मन इन्द्रियों का बल से दमन=कुमार्ग कुवस्तु कुभक्ष्य कुसङ्ग से निरोध

दम कहा जाता है। श्रौतस्मार्तस्वरूप अग्निहोत्र दानयज्ञादि कर्म होते हैं, स्वाध्याय=अध्ययन अध्यापन जपादि भी कर्म होते हैं, अमानित्वाऽदम्भित्वादि भी ज्ञान के साधन प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार सब वेद और वेद के व्याकरणादि सब अङ्ग भी विद्या के साधन और प्रतिष्ठा स्वरूप होते हैं, क्यों कि ज्ञान के साधन वेदादि के श्रवणादि से विद्या उत्पन्न होती है और स्थिर रहती है। 'सत्यं=सत्य भाषणं=मन वचन शरीर में कुटिलता=कपट का त्याग 'अमायिकता' विद्या का आयतन=निवास स्थान है। सत्य के रहने पर विद्या वर्तमान रहती है। 'न येषु जिह्ममनृतं न माया च। प्रश्नोप० १।१६' जिनमें जिह्म=कपट, मिथ्या–भाषण और माया का अभाव रहता है। उनमें विद्या रहती है॥

"सत्येनलभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्। अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥१॥

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाऽऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥२॥ मुण्डक ३।१।५–६॥"

नित्य=सत्यभाषण=मिथ्या भाषण के त्याग से "मनसश्चेन्द्रियाणां चैकाग्र्यं परमं तपः" मन इन्द्रियों के एकाग्रता रूप नित्य तप से, सम्यक् संशयादि रहित नित्य ज्ञान से नित्य ब्रह्मचर्य से यह आत्मा लभ्य ज्ञातव्य=प्राप्त करने योग्य है। सो आत्मा शरीर के अन्दर हृदयाकाश में शुभ्र=शुद्ध ज्योतिर्मय=व्यक्त प्रकाश स्वरूप रहता है कि जिसको कामादि दोष रहित, यतन शील यति अनुभव करते हैं॥१॥ सत्य का=सत्यभाषी का विजय होता है, अनृत का नहीं= अनृत भाषी का नहीं, सत्य से ही देवयान पथ=मार्ग वितत=विस्तीर्ण रूप से सदा वर्तमान है, कि 'येन' जिस मार्ग से आप्तकाम ऋषि=तृष्णा रहित विद्वान् वहाँ आक्रमण=गमन करते हैं, कि जहाँ सत्य का वह परम श्रेष्ठ निधान=निधि है॥२॥

**यो वा एतामेवं वेदाऽपहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥ ९ ॥**

इति केनोपनिषच्चतुर्थं खण्डः समाप्तः

इति केनोपनिषद् समाप्ता

यः साधको जिज्ञासु वै निश्चताम्-एतां पूर्वोक्तामायतन प्रतिष्ठासहितां "ब्रह्म ह देवेभ्यः" इत्यादिना स्तुतां विद्यां वेदः उपासीत प्राप्नुयात्' स पाप्मानम् अविद्याकामादिलक्षणं पापपुण्यात्मकं सर्वं जन्मादिप्रदं दोषमपहत्य विनाश्य अनन्ते त्रिविधभेदरहितेऽविनाशिनि स्वर्गे=सुखात्मके, लोके प्रकाशात्मके स्वरूपे ब्रह्मणि, ज्येये=ज्यायसि सर्वमहत्तरे पारमार्थिके स्वस्वरूप एव प्रतितिष्ठति जीवन्मुक्तः सन् विदेहमुक्तो भवति "अमृतत्वं हि विन्दते" इति सफलोक्तविद्याया इहोपसंहारो वेदितव्यः। पदाऽभ्यास उपनिषत्समाप्ति बोधकः ॥ ९ ॥

जो कोई साधक जिज्ञासु इस पूर्ववर्णित निश्चित आयतन प्रतिष्ठा सहित "ब्रह्म ह" इत्यादि से प्रसंसित विद्या को 'वेद' जानेगा, विद्या द्वारा निर्गुण सगुण ब्रह्म की अनुभूति उपासना करेगा, विद्या को उक्त साधनों से प्राप्न करेगा, सो साधक जिज्ञासु, अविद्या कामादि जन्य जन्मादि के कारण स्वरूप पापों का अपहत्य = नष्ट करके, अनन्त = त्रिविध भेद रहित अविनाशी, स्वर्ग सुखस्वरूप = ज्येये = प्राप्य सर्वश्रेष्ठ महान् विभु लोक = ज्योतिः स्वरूप ब्रह्मात्मा में प्रतिष्ठित = स्थिर = जीवन्मुक्त होता हुआ विदेह मुक्त होता है, पुनरावृत्ति रहित नित्य निश्चलमुक्तस्वरूप होता है। अन्तिमपाद की आवृत्ति उपनिषद् की समाप्ति का बोधक है ॥९॥

**ब्रह्मविद्भवति ब्रह्म सुखं शान्ति च विन्दते ।**
**लभते चामृतत्वं स कृत्वो पासनमादितः ॥ १ ॥**

स्वधर्मोपासनं नित्यं गुरोश्चोपासनं तथा ।
ब्रह्मज्ञोपासनं चोक्तं ब्रह्मोपासनया कृतम् ॥ २ ॥

धुनोति सर्वपापादीन् कामादीनां क्षयं यदा ।
कृत्वा दर्शयते ब्रह्म ह्युपासनं महोदयम् ॥ ३ ॥

इति ब्रह्मविद्वरिष्ठ श्रीस्वामिहनुमद्दास षट्शास्त्रि
विरचिता केनोपनिषद्स्य संस्कृत
व्याख्या समाप्ता ।

ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्म होता है, सुख और शान्ति पाता है, प्रथम उपासना करके ब्रह्म ज्ञान से वह अमृतत्व मोक्ष पाता है ॥१॥ सदा निज धर्म की उपासना, तथा गुरु की उपासना और ब्रह्मज्ञ की उपासना भी उक्त ब्रह्मोपासना के साथ की हुई, सब पापादि को नष्ट करती है, कामादि को नष्ट करके ब्रह्म दर्शन कराती हैं। अतः ब्रह्म की उपासना महान् उद्यमका हेतु है ॥३॥

ब्रह्मविद्वरिष्ठ श्री स्वामी हनुमानदासजी साहब
षट्शास्त्री विरचित केनोपनिषद् की
हिन्दी टीका समाप्त हुई ॥



# शुद्धिपत्र

| अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति |
|---|---|---|---|
| ओर | और | ५ | १० |
| प्रसाद | प्रसार | ५ | १५ |
| हनुमान् | हनुमत् | ५ | २२ |
| जायमी | जायगी | ६ | २ |
| नाहित्य | साहित्य | ६ | १० |
| अतनी | अपनी | ६ | २३ |
| निराकार मस्त्व | निराकरणमस्त्व | ८ | ३ |
| सर्वाण्याप्यन्तु | सर्वाण्याप्यायन्तु | ८ | ९ |
| वभाव | अभाव | ८ | २४ |
| नवमाऽभ्या | नवमाऽब्या | ८ | ३० |
| व्रहम | ब्रह्म | १० | ९ |
| व्रहम | ब्रह्म | १० | ११ |
| द्युपघ्राम्य | द्युपक्रम्य | ११ | ११ |
| इत्यादिप्ते | इत्यादिसे | ११ | १० |
| अनुमार | अनुसार | ११ | १८ |
| प्राणाश्च | प्राणश्च | १३ | १० |
| श्चक्षुर | चक्षुषश्चक्षुर | १३ | १० |
| ऽऽत्मानंत्मानं | ऽऽत्मानं | १३ | २८ |
| ऽमात्प्र | ऽस्मात्प्र | १३ | २९ |
| भुञ्जीथा | भुञ्जीथा | १४ | २ |
| वहिन | वहिन | १५ | १२ |
| विजानीमौ | विजानीमो | १७ | १६ |
| वमक्त | व्यक्त | १७ | २५ |
| जा | जो | १८ | ३ |
| स्यान्त | स्यात्त | १८ | ९ |
| यन्मकसा | यन्मनसा | १९ | ११ |
| वणित | वर्णित | २० | १२ |

| अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति |
|---|---|---|---|
| गृहणाति | गृह्णाति | २१ | २६ |
| यतरद | यतस्तद | २२ | १ |
| खण्ड | खण्ड: | २३ | २ |
| ब्रहमास्ति | ब्रह्मास्ति | २४ | १२ |
| ब्रहम | ब्रह्म | २४ | १३ |
| शिष्य | शिष्य | २५ | ८ |
| विरोघो | विरोधो | २५ | १७ |
| ब्रहम | ब्रह्म | २५ | २८ |
| पूवोक्त | पूर्वोक्त | २६ | १० |
| यद्यप | यद्यपि | २८ | ३ |
| ब्रहम | ब्रह्म | ३१ | २२ |
| ब्रहमणो | ब्रह्मणो | ३२ | २ |
| ब्रहम | ब्रह्म | ३२ | २२ |
| किनामसि | किंनामसि | ३५ | १ |
| अत्र वक्तवन्त: | अत्र वनुक्तवन्त: | ३६ | १० |
| एत | एतत् | ४० | ५ |
| यया | गया | २० | ६ |
| त्तस्मात् | तस्मात् | ४१ | २ |
| लिथे | लिये | ४३ | ६ |
| ह्य नन्नेष्ठिं | ह्य नन्नेदिष्ठं | ४३ | १३ |
| अग्रि | अग्नि | ४४ | १३ |
| दिषय | विषय | ४६ | २२ |
| हर्मनोमतप्यिुक्तम् | हुर्मनोमतमित्युक्तम् | ४७ | ३ |

सूचना—यद्यपि मुद्रण यन्त्र बाहुल्य होने पर भी मुद्रण कार्य शोभन नहीं है। मुद्रणकर्ता की असावधानी तथा अक्षर संयोजक की असावधानी से इस ग्रन्थ में गलतियों एवं अनुट्ठे रह जाना स्वाभाविक है। अत: पाठकगण कृपया सुधार कर पढ़ें।

———

परपूज्यपादश्रीस्वामीहनुमानदासजी साहब षट्शास्त्री

कृत तथा अनुवादित

# ग्रन्थों की नामवली

## (१) अनुवादित

१. बीजकभाष्य शिशुबोधिनीव्याख्या
२. बीजक की श्लोकबद्ध संस्कृतव्याख्या
३. बीजक की संस्कृत हिन्दी व्याख्या
४. बीजक की सार बोधिनी टीका
५. बीजक की धन्नौती पाठपर हिन्दी-स्वानुभूतिव्याख्या,
६. सटीक साखी ग्रन्थ
७. शब्दामृतसिन्धु की विरल टीका
८. तीसा यन्त्र की टीका
९. तत्त्वार्थमणिमाला सटीक
१०. कबीर परिचय की टीका
११. कबीर कौशलसार सटीक
१२. संशय खण्डन की टीका
१३. विचार सागर की टीका टिप्पण
१४. अनन्त परिचय और अनन्त सागर पर टिप्पण
१५. मनोबोधपर टिप्पण
१६. ब्रह्मसूत्र की हिन्दी टीका
१७. ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य की हिन्दी टीका
१८. खण्डनखण्डखाद्य की हिन्दी टीका
१९. श्रीमद्भगवद्गीता की संस्कृत टीका
२०. श्रीमद्भगवद्गीता की हिन्दी टीका
२१. ईशावास्योपनिषद की संस्कृत हिन्दी टीका
२२. केनोपनिषद की संस्कृत हिन्दी टीका
२३. विचारचन्दोदय
२४. चित्सुखी, यंत्रस्थ

## (मौलीक)

१. अध्यात्मतत्त्वसम्बाद सटीक
२. अध्यात्मतत्त्वसम्बाद मूल
३. तत्त्वार्थ दोहावली
४. तत्त्वार्थमणिमञ्जूषा सटीक
५. तत्त्वार्थमणिमञ्जूषामूला
६. भक्तचारितामृत
७. लघुधर्म चन्द्रिका
८. सद्धर्म चन्द्रिका
९. कबीर सन्देश
१०. दिव्य नामावली
११. भक्ति-भक्तभगवन्त स्तुति
१२. बीजक सार संग्रह